Malini
मालिनी

Vol. XII No. II Autumn - 2005

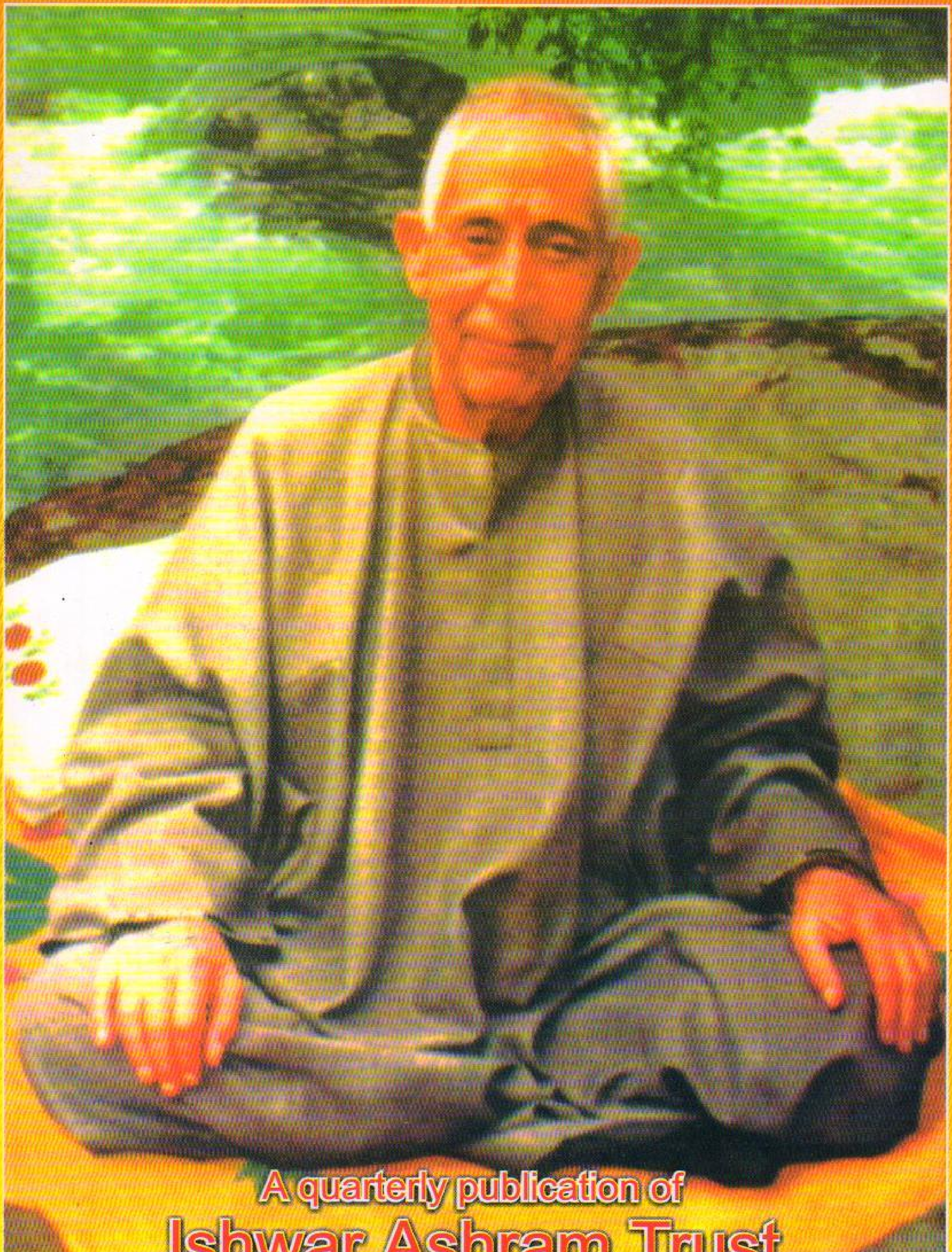

Dr. Karan Singh performing Puja at Amriteshvara Bhairava temple in Ishwar Ashram premises.

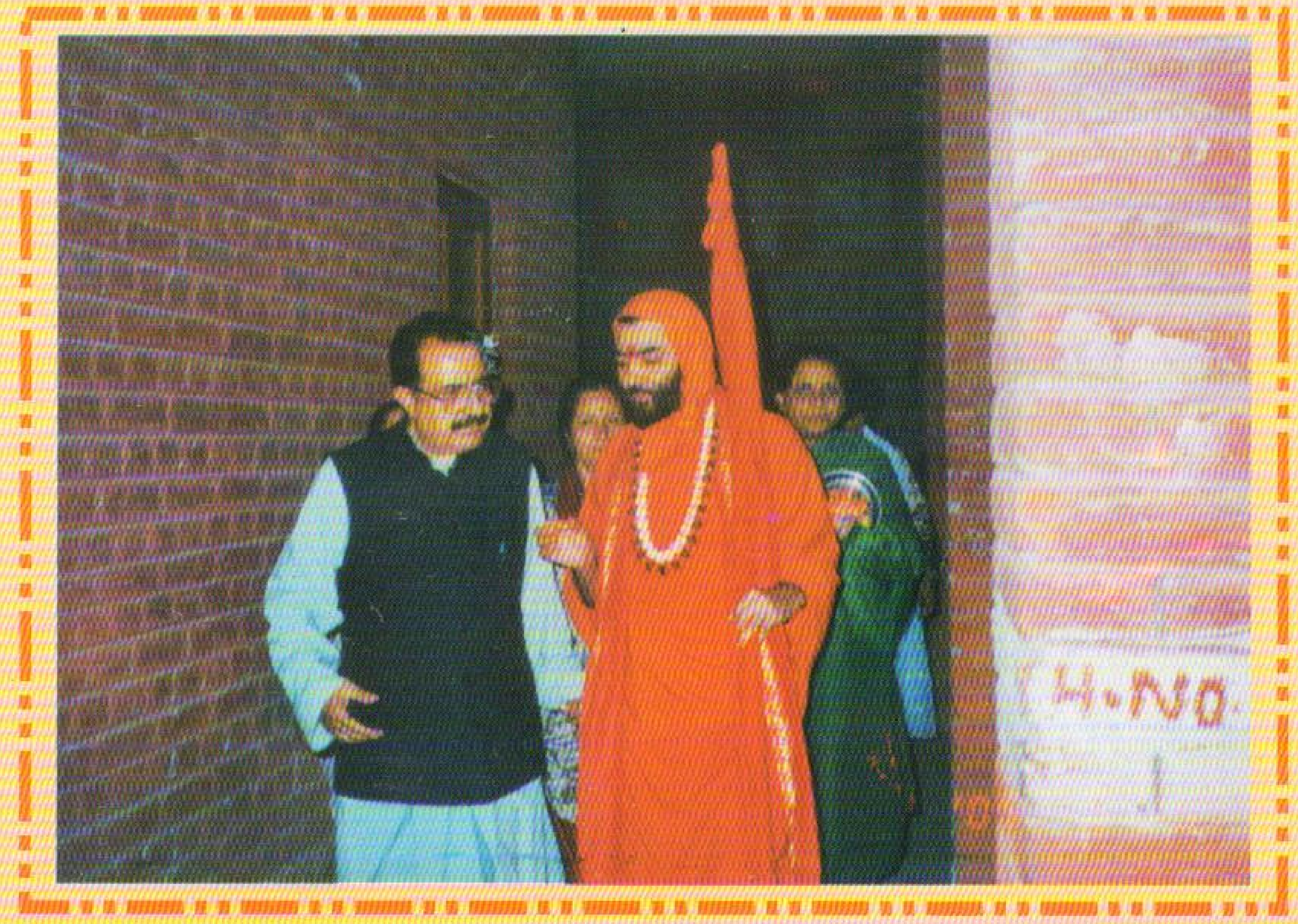

Jagatguru Shankracharya Swami Amritananda Dev of Kashyapameru visits Ishwar Ashram, Ishber on Jyeshtha Ashtami.

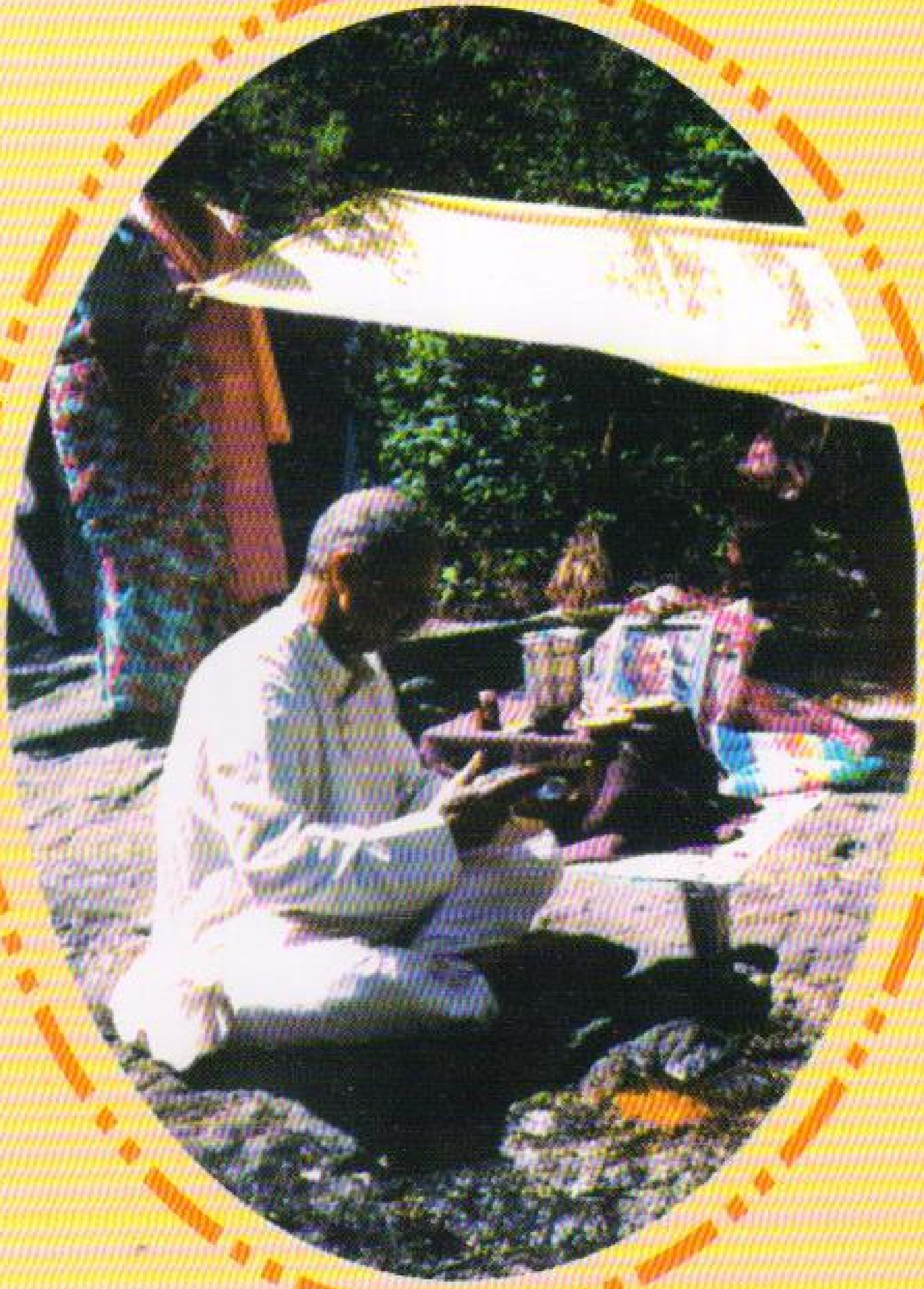

Above: Disciples of Swami Ji performing Puja at Shankarpal.

. XII No. II

Autumn - 2005

Malini
मालिनी

Board of Trustees:
Shri Inderkrishan Raina *(Secretary/ Trustee)*
Shri Samvit Prakash Dhar
Shri Brijnath Kaul
Shri Mohankrishan Wattal

Advisor, Editorial Board:
Shri Samvit Prakash Dhar

Editor in Chief:
Prof. Makhanlal Kukiloo

Editorial Board:
Dr. Shashi Shekhar Toshkhani
Shri Motilal Pandit
Prof. Chamanlal Saproo
Shri Somnath Saproo

Associated Editor:
Shri Vijay Kumar Kaul

Joint Editors:
Smt. Sheela Munshi
Smt. Anjana Dhar

Printed & Published on behalf of
Ishwar Ashram Trust by Shri R. K. Sadhu and
printed at Shakti Printing Press,
Daryaganj, Delhi.

Subscription:
Per copy : Rs. 25.00
Yearly : Rs. 100.00

Head Office:
Ishwar Ashram, Ishber (Nishat), Srinagar, Kashmir,
Tel. 0194-2461657.

Administrative Office:
hwar Ashram Bhawan, 2-Mohinder Nagar, Canal Road,
Jammu Tawi-180 016, Tel. 2501199, 2555755.

Delhi Office:
Ishwar Ashram Bhawan, R-5/D Pocket, Sarita Vihar,
New Delhi- 110 044, Tel. 26958308.

Cover : Ishvarsvarup Svami Lakshman Joo at Shankarpal.

विषय सूची

CONTENTS

› संपादकीय		2
› श्री सद्गुरु महिमा	प्रो. मखनलाल कुकिलू	3
› श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्	जगद्गुरु शंकराचार्य	4
› Shankracharya's Hymn to Dakshinamurti		5
› Shiva Sutras: An Elucidation	Ishvarsvarup Svami Lakshman Joo	6
› Abhinavagupta - A Study	Moti Lal Pandit	11
› The Visitation (a long poem)	Mohan Wattal	14
› कश्मीर शैवदर्शन - आधुनिक युग में इसकी उपादेयता	प्रो. मखनलाल कुकिलू	19
› Gurudev on Malini		26
› Stavachintamanih of Bhattanarayana:	Ishwarsvaroop Swami Lakshman Joo	27
› योग का महत्त्व और भारतीय जीवन पद्धति	डॉ॰ जागीर सिंह	30
› Shri Rudram: A *Commentary*	Swami Dayananda Saraswati of Rishikesh	35
› Preparations for Ishwarswaroop Swami Lakshman Joo's Birth Centenary Celebrations		38

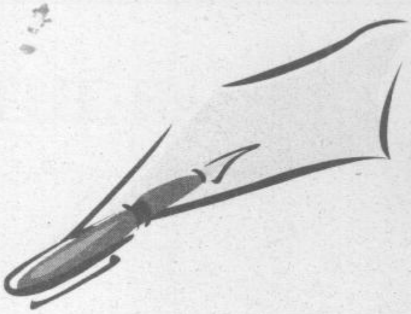

मालिनी का नया रूप

संपादकीय

'मालिनी' का यह अंक प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है। पत्रिका के रूप-रंग और सज्जा में आमूल परिवर्तन किया जा रहा है, जिसकी एक झलक आपको प्रस्तुत अंक से ही मिल जायेगी। मालिनी अधिकाधिक लोकप्रिय हो और सामान्य पाठक भी उसके माध्यम से कश्मीर शैव-दर्शन के विभिन्न पक्षों की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर सकें, इस उद्देश्य से पत्रिका के अगले अंकों में काफी विविधतापूर्ण सामग्री देने का हमारा विचार है। हमें यह सूचित करते हुऐ हर्ष का अनुभव हो रहा है कि इस विचार को कार्य-रूप देने के लिए 'मालिनी' के एक नये संपादक मंडल का गठन किया गया है। श्री मोतीलाल पंडित, डॉ० शशिशेखर तोषखानी और प्रो० चमनलाल सप्रू इस नवगठित संपादक मंडल के आदरणीय सदस्य होंगे। ये तीनों अपने-अपने क्षेत्रों मे जाने-माने और अधिकारिक विद्वान हैं। कहने की अवश्यकता नहीं कि तीनों विद्वानों की ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू में गहरी श्रद्धा है।

श्री मोतीलाल पंडित बौद्ध और त्रिक् दर्शन के प्रसिद्ध और सम्मानित विद्वान है। उनकी अंग्रेजी में तेरह से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनकी विद्वत्-वर्ग में व्यापक रूप से प्रशंसा हो रही है। विदेशी विश्वविद्यालयों में उन्हें प्रतिवर्ष विशेष व्याख्यान प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

डॉ० शशिशेखर तोषखानी ख्यातिप्राप्त हिंदी कवि होने के साथ-साथ प्रतिष्ठत विद्वान भी है। भाषाशास्त्र, साहित्य, सौन्दर्यशास्त्र, कला, संस्कृति, इतिहास, दर्शन तथा समाजशास्त्र उनके अध्ययन के विशेष क्षेत्र रहे हैं।

जाने-माने लेखक प्रो० चमनलाल सप्रू प्रारंभ से ही ईश्वर आश्रम, श्रीनगर के आयोजनों से संबद्ध रहे है। सद्गुरु महाराज उन्हें "भक्त चूडामणि" के नाम से पुकारते थे। कोशुर समाचार के कश्मीरी विभाग के संपादक प्रो० सप्रू हमारे विशेष अनुरोध पर अब मालिनी के कश्मीरी भाग का भी संपादन करेंगे।

श्री संवित्प्रकाश धर, जो सद्गुरु महाराज के समीपस्थ शिष्यों में से एक रहे है यथावत् "मलिनी" के प्रकाशन में परामर्शदाता के रूप में हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे। सद्गुरु महाराज के सान्निध्य का गौरव उन्हें प्राप्त रहा है, और इस कारण कश्मीरी शैव-दर्शन के गहनतम पक्षों का उनका अध्ययन विशेष रूप से प्रामाणिक है।

हमारा पूरा विश्वास है कि नये संपादक मंडल के अमूल्य सुझावों से 'मालिनी' ऊँचाई के शिखरों का स्पर्श करेगी। सदगुरु महाराज के शिष्यगण, भक्तजन तथा प्रशंसकों को यह सूचित करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है कि सन् 2006 ईस्वी का वर्ष, ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू की जन्म-शतवार्षिकी के रूप में, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, मनाया जा रहा है। ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट के न्यासी, तन मन धन से इस शताब्दी वर्ष को चिर स्मरणीय बनाने के प्रयत्नों में रत है।इस संबध में किए जाने वाले विभिन्न आयोजनों को सम्पन्न करने के लिए विशेष समितियों के सदस्यों का चयन कर लिया गया है। इस अवसर पर 'मालिनी' का भी एक विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें स्वामी लक्ष्मणजू के जीवन और विचारों तथा कश्मीर शैवमत के विभिन्न पक्षों पर विशेष प्रकाश डाला जायेगा। इसके लिए अभी से तैयारियाँ शुरू हो गयी है और आधिकारिक विद्वानों से अपने लेख भेजने का अनुरोध किया जा रहा है।

--प्रो. मखनलाल कुकिलू

श्री सद्गुरु महिमा

-प्रो० मखनलाल कुकिलू

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवेनमः।।

भास्कर जैसे निज प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ समस्त विश्व को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार सद्गुरु सारे जगत के प्राणियों का आभ्यन्तर अन्धकार मिटाकर ही प्रसन्न होते हैं। पर जन्म-जन्मान्तरों के कालुष्य को मिटाने में सद्गुरु महाराज के श्री चरणों का प्रकाश जितना समर्थ है उतना भास्कर का प्रचंड प्रकाश कहाँ कहा है कि-

अस्त्यस्मिन् महसां महानिधिर सौ
देवो विवस्वान् महान इति

अर्थात्-

प्रकाश महानिधि उग्रतेजधर
भास्कर जग में हैं महान्।।
जिसके उदय से जगता सब जग
भ्रान्त, निशान्ध भी एक समान।।
उस प्रकाश से बढ़-चढ़ कर हैं
गुरु के श्रीचरण प्रकाशवान
जिससे तत्क्षण मिटता सारा
जन्मान्तर अर्जित अज्ञान।।

यह सद्गुरु महाराज का अद्भुत माहात्म्य है कि उनका दिव्यस्वरूप ही माया के अन्धकार में भटकने वाले पथिकों का अपने अपूर्व ज्ञान ज्योति से मार्ग प्रर्दशन करता है। जिस प्रकार पानी में नमक के मिलने से नमक का स्वरूप मिट जाता है और वह पानी के साथ एकाकार होता है उसी प्रकार सद्गुरु के दिव्य प्रकाश में मित प्रकाश मिल कर अनिर्वचनीय हो जाता है। सद्गुरु शिवस्वरूप है। ''शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'' इस आधार पर हम भी स्वयं शिवस्वरूप होकर शिवरूप गुरु के लोककल्याणकारी के भागीदार बनें। जैसे भुना हुआ बीज अंकुर-उत्पादन की क्षमता से रहित होता है, वैसे ही सद्गुरु महाराज का दर्शन मात्र सांसारिक अशुभवासनाओं की फलप्रदाशक्ति की क्षीण बनाता है। जैसे ''सर्वदेव नमस्कार: केशवं प्रतिगच्छति'', वैसे ही श्रद्धा, भक्ति, अनुराग तथा समस्त वन्दनादि सद्गुरु महाराज के श्रीचरणों में समर्पित होता है। सद्गुरुदेव का माहात्म्य अपरम्पार है। इनसे जिन्होंने जो चाहा उन्हें वह प्राप्त हुआ। सद्गुरुदेव वह कल्पतरु हैं, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। सद्गुरु महाराज का श्रीविग्रह दिव्य तत्त्वों से समुज्ज्वल है। भागीरथी की धारा की तरह सतत रूप से प्रवहमान है। श्री गुरुदेव का नाम-जप अनुत्तर लोकलीला का क्षेत्र श्री गुरुदेव का व्यक्तित्व सविकल्प समाधि तथा निर्विकल्प समाधि का मिश्रण है। यह सद्गुरु का ही माहात्म्य है कि शिवरूप श्री गुरु से दीक्षित शिष्य दीक्षाकाल में जिस तत्त्व में योजित होता है, वह उसी तत्त्व में परिनिष्ठित होता है। श्री मालिनी विजयोत्तर तंत्र में कहा है

यो यत्र योजितस्तत्त्वे स तस्मात् न निवार्यते।

श्री तन्त्रालोक में भी आचार्य अभिगुप्तपाद ने कहा है कि-

शिवोऽयं शिव एवास्मीत्येवमाचार्यशिष्ययो:।
हेतु तत्वत्ततया दार्ढ्याभिमानो मोचको ह्यणो:।।

अर्थात् मेरा आराध्य गुरु ही शिव है, मैं भी स्वयं शिव हूँ। इस तरह गुरु और शिष्य में हेतु हेतुमत् भाव के आधार पर अभिमान की दृढ़ता जीव या पशु को पशुता के पाश से छुटकारा दिलाने में सक्षम होती है।

यह सद्गुरु महाराज का माहात्म्य है कि उनके उपदेशामृत के वाक्य ममत्व की दावा से झुलसी हुई मरुस्थली को प्रावृट् की वर्षा की तरह आसिंचन कर शांत कर कंही रहती है और, उनके कृपा-कटाक्षों की चन्द्रिका पूर्वजन्म-संचित वासना-संस्कारों की ऊसर भूमि में शीतलता की छाया बिखेरती है। उनकी स्मृति नन्दनवन की कल्पलता की तरह प्रत्येक सिद्धि प्रदान करती है। सद्गुरुदेव अपने माहात्म्य से जीव के अहंग्रह को शांत करते हैं। आवागमन के झंझट में उलझे जीव को भ्रम से मुक्त करते हैं। जीव की उलझी बुद्धि तथा भ्रान्त मन की उलझन को दूर करते योग के सामर्थ्य से स्वच्छ बनाते हैं। सद्गुरु देव का वरदहस्त जब दीक्षित शिष्य के मस्तक को अलंकृत करता है, तभी आत्मानुभूति की ज्योति जागृत होती है। पंचभौतिक शरीर में कुछ दिन रहते हुए भी वह जीवन्मुक्त अवस्था में देहाभिमान शून्य होकर विचरण करता है। शैवी सद्गुरु की अनुकम्पा अमृततत्त्वमय है। अत: उससे क्षणमात्र में ही जीवन में अमरत्व का आभास होता है।

सद्गुरु कृपा करके हमें वह दिव्य दृष्टि प्रदान करें जिससे यह जीवन सफल और सार्थक हो जाए।

श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

श्रीदक्षिणामूर्तयेनमः

विश्वं दर्पणदृश्यमानगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यस्साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तयेनम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।१।

बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुनः
मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम्।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।२।।

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थगं भासते
साक्षात्तत्वमसीति वेदवचसा यो बोधयन्याश्रितान्।।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधै
तस्मै श्रीगुरुमर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।३।।

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिस्स्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।। ४।।

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।। ५।।

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशोमायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।६।।

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्पन्तः स्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।७।।

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसंबन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मता भेदतः।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामितः
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।८।।

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशु पुमान्
इत्याभातिचराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किंचन विद्यते विमृशतां यस्मात्परस्मादिविभोः
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।९।।

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिंस्तवे
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाद्ध्यानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वान्मत्वमहाविभूतिसहितं स्याददीरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत्तपुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ।।१०।।

SHANKARACHARYA'S HYMN TO DAKSHINAMURTI

(English translation)

1. To him who by *maya*, as by dream, sees within himself the universe which is inside him, like a city that appears in a mirror, (but) which is manifested as if externally to him who apprehends, at the time of awakening, his own single self, to him, the primal Guru, Dakshinamurti, may this obeisance be!

2. To him who like a magician or even like a great *yogi* displays, by his own power, this universe which at the beginning is undifferentiated like the sprout in the seed, but which is made differentiated under the varied conditions of space, time, and *karma* and posited by *maya*: to him, the Guru Dakshinamurti[1], may this obeisance be!

3. To him whose luminosity alone, which is of the nature of existence, shines forth, entering the objective world which is like the non-existent; to him who instructs those who resort to him through the text 'That thou art'; to him by realizing whom there will be no more fall into the ocean of birth; to him who is the refuge of the ascetics, the Guru Dakshinamurti, may this obeisance be!

4. To him who is luminous like the light of a lamp set in a pot with many holes: to him whose knowledge moves outward through the eye and other sense organs; to him who is effulgent as 'I know', and the entire universe shines after him; to him, the unmoving Guru Dakshinamurti, may this obeisance be!

5. They who know the 'I' as body, breath, senses, intellect, or the void, are deluded like women and children, and the blind and the stupid, and talk much. To him who destroys the great delusion produced by ignorance; to him who removes the obstacles to knowledge, the Guru Dakshinamurti, may this obeisance be!

6. To him, who sleeps when the manifested mind gets resolved, on account of the veiling by *maya*, like the sun or the moon in eclipse, and on waking recognizes self-existence in the form 'I have slept till now'; to him the Guru of all that moves and moves not, Dakshinamurti, may this obeisance be!

7. To him who, by means of the hand-pose indicating illumination, manifests to his devotees his own Self that for ever shines within as 'I', constantly, in all the inconstant states such as infancy, etc., and waking, etc. -- to him the Guru Dakshinamurti, may this obeisance be!

8. To the self who, deluded by *maya*, sees, in dreaming and waking, the universe in its distinctions such as cause and effect, master and servant, disciple and teacher, and father and son, to him, the Guru of the world, Dakshinamurti, may this obeisance be!

9. To him whose eightfold form is all this moving and unmoving universe, appearing as earth, water, fire, air, ether, the sun, the moon, and soul; beyond whom, supreme and all-pervading, there exists naught else for those who enquire--to him the gracious Guru Dakshinamurti, may this obeisance be!

10. Since, in this hymn, the all-self hood has thus been explained, by listening to it, by reflecting on its meaning, by meditating on it, and by reciting it, there will come about lordship together with the supreme splendour consisting in all-self-hood; thence will be achieved, again, the unimpeded supernormal power presenting itself in eight forms.

1. The Supreme Guru is the spiritual north pole and therefore traditionally faces southwards.

SHIVA SUTRAS

Elucidation of Kshemaraja's Vimarshini Sanskrit Tika

by

Ishvarsvaraup Swami Lakshman Joo

Continued from the previous issue:

यथोक्तनीत्या शिवतुल्यतया नित्यमेवं व्रतजपचर्यानिष्ठत्वात् निजशक्ति चक्रारूढः स एव तत्वतः उपदेश्यानां प्रतिबोधक।

इत्याहः--

यथोक्तनीत्या – as already explained, शिवतुल्यतया – he becomes just like Shiva नित्यमेवं always like this व्रतजपचर्या निष्ठत्वात्- remaining busy in observing fasts, reciting mantras and in his daily routine निजशक्ति चक्रारूढ़ः– having mastery over his own wheel of energies स एव he alone is, तत्वतः – in reality उपदेश्यानां - to all disciples प्रतिबोधकः – illuminator इतयाह – he explains this in the next Sutra --

योऽविपस्थो ज्ञाहेतुश्च।।२६।।

(yo' vipastho jnanahetushcha)

The *yogi* who commands the entire wheel of cognitive and active organs is the only means of attaining knowledge of transcendental God-consciousness.

अवीन् पशून् पाति इति अविपं "कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशुमातरः" (3-19)

इत्यभिहितदृशा माहेश्वर्यादि शक्ति चक्रम् ।।३०।।

अवीन् पशून् पाति इति अविपं - those who are ignorant are protected in their own way by माहेश्वर्यादि शक्ति चक्रं - the wheel of energies called *maheshvari, gochari, khechari* etc. As is said in Sutra 19 of the Third Awakening that the world of letters, words and sentences, the eight energies of Lord Shiva namely *maheshvaryah* etc. are the mothers or masters of beasts- the ignorant beings.

तत्र-विदित स्व माहात्म्यत्वात् प्रभुत्वेन यः प्रतपति, स ज्ञाहेतु – जानाति इति ज्ञा – ज्ञानशक्तिः तस्याः हेतुः उपदेश्यान् ज्ञानशक्त्या प्रतिबोधयितुं क्षमः। तत्र – over these energies, तिष्ठति – the master has sovereignty विदित स्व माहात्म्यात् – by knowing his greatness, प्रभुत्वेन यः प्रतपति – he is successful in imparting knowledge to others. स ज्ञाहेतु -- this type of master becomes the cause of knowledge, जानाति इति ज्ञा- ज्ञानशक्ति तस्याः हेतु – the word ज्ञा in this Sutra means the energy of knowledge, he becomes the source of that knowledge. उपदेश्यान् ज्ञानशक्त्या प्रतिबोधयितुं क्षमः by the energy of knowledge the master becomes successful in imparting knowledge to his disciples.

अन्यस्तु शक्तिचक्रपरतन्त्रीकृतत्वात्- the person who is dependent on these energies, स्वात्मनि अप्रभविष्णुः is not able to protect himself, कथमन्यान् प्रबोधयेत्- so how could he protect others यच्छब्दापेक्षया सूत्रेऽत्र तत् शब्दोऽध्याहार्यः -- in this Sutra as per Sanskrit grammar where '*yat*' is found then the pronoun 'tat' also be added to complete the sentence. It means he who has control over the one who commands this wheel of energies that master is competent in inserting knowledge to his disciples च शब्दो ह्यर्थे -- here च is used in the sense of certainly. योऽयमविपस्थः -- one who is not influenced by this wheel of energies, स यस्मात् ज्ञान प्रबोधनहेतुः because he is the cause of inserting knowledge in to his disciples तस्मात्- therefore युक्तमुक्तम्- it is correctly said 'दानमात्मज्ञानं' that he imparts knowledge of the self to others.

अन्ये तु अक्षरसारूप्यात् प्रब्रूयात् – Some commentators explain this Sutras in another way. They say that this Sutra must be explained as per words and letters as follows. Take the first word of the Sutras 'यो' (*yo*). It indicates इति योगीन्द्रः the competent master of *yoga*, the word 'वि' (*vi*) of the Sutras indicates इति विज्ञानं- knowledge: the word 'प' (*pa*) of Sutra means पदम्- state; स्थः means the one who is established in that state; इत्यस्य अन्त्यमक्षरं- this is the last word of the Sutra ''ज्ञाहेतुः in the Sutra means 'like this'; ज्ञा means ज्ञाता -- one who knows that; हेतुः -- in this word 'हे' means 'हेयः' (*heyah*) which means what is to be discarded; तु (*tu*) means

तुच्छता -- the differentiated perception; *visargah* indicates विसर्गशक्ति -- creative energy; चकारेण अनुक्त समुच्चयार्थेन -- the word '*cha*' च does not mean "and" but कर्ता परामृश्यते -- it indicates the subject who does this. इत्याश्रित्य – so with this in mind; यो योगीन्द्रो – that Yogindra विमर्शशक्त्या- by the energy of his awareness, स्वरूपात्मविज्ञान पदस्थ:- is established in his own nature of God-consciousness; स ज्ञाता कर्ता च अवगन्तव्य: – he is the knower and doer – तदा च अस्य हेयतां-तुच्छतां-नि:सारतां न तु उपादेयतामासादयति – then he can differentiate and perceive what is to be discarded and what is to be differentiated and he does not accept that which is to be discarded. एतच्च न न: प्रतिभाति- this does not suit our thinking. पदार्थ संगतेनातिचारुत्वात् - this type of explanation does not beft. प्रतिसूत्रं च ईदृशव्याख्याक्रमस्य सहस्रशो दर्शयितुं शक्यत्वात् - in every Sutra, this type of explanation will lead us nowhere. In this way thousands of explanations are possible.

अस्य च - for this type of *yogi*

स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्।।३०।।

(*svashakti prachayo'sya vishvam*)

For him the whole universe is the totality of his own energies.

यतोऽयं शिवतुल्य उक्तस्ततो यथा --

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नम्-इत्याद्याम्नायदृष्ट्या शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं तथा अस्यापि स्वस्या: संविदात्मन: शक्ते: प्रचय: = क्रियाशाक्तिस्फुरणरूपो विकासो, विश्वम्।

यतोऽयं शिवतुल्य उक्तस्ततो यथा– so just as that master is said to be like Shiva; शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं-and this whole universe is his own energy इत्याद्याम्नाय दृष्टया- so according to Agma viewpoint, शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं – this universe is the embodiment of Lord Shiva's energies; तथा अस्यापि – so in the same way for the *yogi* also स्वस्या: संविदात्मन: शक्ते: – this whole universe is a collection of energies because he is one with that God-consciousness. प्रचय: – क्रियाशक्ति स्फुरणरूपो विकासो विश्वम् – this universe is the collection and expansion of his energies यदुक्तं श्रीमृत्युजिति – as is said in Netratantra:-

यतो ज्ञानमयो देवो ज्ञानं च बहुधा स्थितम्।

नियन्त्रितानां बद्धानां त्राणं तत् नेत्रमुच्यते।।

Because Lord Shiva is the embodiment of knowledge and that knowledge is endlessly divisible, the knowledge that frees you from the limited knowledge of the universe, is called *netram*.

कालिकाक्रमेऽपि – it is also said in Kalikakrama:-

तत् तत् रूपतया ज्ञानं बहिरन्त: प्रकाशते।

ज्ञानात् ऋते नार्थसत्ता ज्ञानरूपं ततो जगत्।।

नहि ज्ञानात् ऋते भावा: केनचित् विपयीकृता:

ज्ञानं तदात्मतां यातं एतस्मात् अवसीयते।।

अस्ति नास्ति विभागेन निषेधविधियोगत:।

ज्ञानात्मता ज्ञेयनिष्ठा भावानां भावनाबलात्।

युगपत् वेदनात् ज्ञानज्ञेययो: एकरूपता।। इति।।

तत् तत् रूपतया ज्ञानं बहिरन्त: प्रकाशते – this knowledge is found inside and outside everywhere by assuming that particular form ज्ञानात् ऋते नार्थसत्ता – without knowledge an object can not exist, ज्ञानरूपं ततो जगत् – the whole universe is filled with that knowledge.

ज्ञानात् ऋते – without knowledge, केनचित् विषयीकृता नहि भावा: – no one has perceived objects, ज्ञानं तदात्मतां यातं – that real knowledge of consciousness has taken the form of the object, एतस्मात् – by that knowledge of consciousness अवसीयते – this knowledge of objects takes place. अस्तिनास्ति विभागेन निषेधविधियोगत: – In practicing Yoga if we perceive that God-consciousness is to be possessed and other than God-consciousness is to be discarded, that is not proper, because we must unite God-consciousness and objective consciousness together भावानां भावनाबलात् – through meditation all these objects, ज्ञानात्मता ज्ञेयनिष्ठा – are found as one with God-consciousness युगपत् वेदनात् – simultaneously possessing this kind of knowledge, then ज्ञान – knowledge ज्ञेययो: – and the known, एकरूपता – will become one i.e. knowledge and known will not be separated.

न केवलं सृष्टिदशायां निजशक्ति विकासोऽस्य विश्वं यत्

तत्पृष्ठपातिनौ-

न केवलं – not only, सृष्टिदशायां – in the created sphere of the world, निजशक्ति विकास: – expansion of his energies, अस्यविश्वं – is this world for him, यत् तत्पृष्ठपातिनौ – but in impressions and in the void state also is the expansion of his energies.

स्थिति लयौ।।३१।।

(Sthitilayau)

Living in this world of ignorance or remaining in the Transcendetnal God-consciousness is the totality of one's own energies of consciousness.

स्वशक्तिप्रचय: इत्यनुवर्तते – this universe is the collection of his own energies. Follow this with the above Sutras.

क्रियाशक्त्या आभासितस्य विश्वस्य – this world is revealed to you by the energy of action, तत् तत् प्रमात्रपेक्षं कंचित्कालं when this universe shines before you, the knowledge of the universe remains for sometime, बहिर्मुखत्वावभासनरूपा as an impression in your objective consciousness, या स्थिति:- that is the meaning of स्थिति: (*sthitih*), चिन्मय प्रमातृ विश्रान्त्यात्मा च यो लय:-the meaning of the word लय: (*layah*) is that when the impressions of this world also melt away in our objective consciousness, that is *layah*. तौ एतौ एतस्य स्वशक्तिप्रचय एव-- these two states are only the expansion of His energies and nothing else. तत् तत् वेद्यं हि आभासमानं विलीयमानं च निज संवित् शक्त्यात्मकं एव अन्यथा अस्य स्व संवेदन अनुपपत्ते। This objective world may be created in his sensual world or it may melt away in his impressions, but this threefold world is nothing more than the expansion of his God-consciousness. Otherwise the impressions would not arise from that nothingness and this objective world would not arise from those impressions.

अत एव श्रीकालिकाक्रमे-

Therefore it is said in Shri Kalikakrama --

अस्ति नास्ति विभागेन निषेध विधि योगत:।

ज्ञानात्मता ज्ञेयनिष्ठा भावानां भावनाबलात्।।

इत्यादि स्थितिलयपरत्वेन उक्तम्।

The differentiation of existence and non-existence and their connection is maintained only by God-consciousness. This has been explained by keeping in the mind *sthitih* and *layah*. तथा- also:

सर्वं शुद्धं निरालम्बं ज्ञानं स्वप्रत्ययात्मकम्।

य: पश्यति स मुक्तात्मा जीवन्नेव न संशय।। इति।।

सर्वं- this whole world is, शुद्धं- pure, निरालम्बं- without any support, ज्ञानं स्वप्रत्ययात्मकम्- one with the knowledge of consciousness of the self. य: पश्यति स मुक्तात्मा- one who perceives this is a liberated soul, न संशय:- without any doubt जीवन्नेव - in this very life.

ननु एवं सृष्टि स्थिति लयावस्थासु अन्योन्य भेदावभासमयीषु अस्य स्वरूप अन्यथात्वं आयातं, इत्याशंका शान्त्यर्थं आह-

ननु एवं- Now the question can be asked, if this *yogi* experiences this world in creation, in maintenance and in destruction though having different states each other, is the expansion of his own nature, then would not his nature be changeable ? To remove this doubt the author explains in the following Sutra:

तत् प्रवृत्तौ अपि अनिरास: संवेत्तृभावात्।।३२।।

(tatpravritavapyanirasah samvettribhavat)

Such a Yogi, though apparently engrossed in the daily routine of life, is in no way separated from God-consciousness.

तेषां सृष्ट्यादीनां प्रवृत्तावपि- उन्मज्जनेऽपि, नास्य योगिन: संवेत्तृभावात्-- तुर्यचमत्कारात्मक विमर्शमयात् उपलब्धृत्वात्, निरास:- चलनं, तन्निरासे कस्यचिदप्यप्रकाशनात्। यदुक्तं तत्रैव कालिकाक्रमे:-

नाशोऽविद्याप्रपंचस्य स्वभावो न विनश्यति।

उत्पत्तिध्वंस विरहात् तस्मात् नाशो न वास्तव:।।

यतोऽविद्या समुत्पत्तिध्वसाभ्यामुपचर्यते।

यत्स्वभावेन नष्टं न तत् नष्टं कथं उच्यते।।इति।।

एतदेव स्पन्दे

अवस्थायुगलं चात्र कार्य कर्तृत्वशब्दितम्।

कार्यता क्षयिणी तत्र कर्तृत्वं पुनरक्षयम्।।

तथा-

कार्योन्मुखः प्रयत्नो यः केवलं सोऽत्र लुप्यते।

तस्मिन् लुप्ते विलुप्तोऽस्मीत्यबुधः प्रतिपद्यते।।

न तु योऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञत्वगुणस्पदम्।

तस्य लोपः कदाचित् स्यात् अन्यस्यानुपलम्भनात्।।

इत्यनेन उक्तम्।।

तत्-तेषां सृष्टयादीनां प्रवृतौ अपि उन्मज्जेनऽपि- Though he creates, protects and destroys this world नास्य योगिनः संवेत्तृभावत् तुर्यचमत्कारात्मक विमर्शमयात् उपलब्धृत्वात् निरासः चलनम्- this *yogi* is never separated from the state of knower where he holds the bliss of *turya-chamatkara* तत् निरासे कस्यचित् अपि अप्रकाशनात् - if in these actions he is separated from the reality of the self, then these three states would not exist.

यदुक्तं तत्रैव- it is said there in the Kalikakrama:-

नाशेऽविद्या प्रपंचस्य - though the expansion of ignorance is destroyed. स्वभावो न विनश्यति – the being of the self is never destroyed. उत्पत्तिध्वंस विरहात् – because that self is beyond creation and destruction तस्मात् नाशो न वास्तवः – therefore in reality nothing is destroyed:

यतोऽविद्या समुत्पत्तिध्वंसाभ्यामुपचर्यते – it is presumed that ignorance is created and destroyed, but it can not exist itself without this knowledge of truth. यत्स्वभावेन नष्टं न तत् नष्टं कथमुच्यते – when ignorance is one with the real nature of the self then how can it be destroyed or created. एतदेवस्पन्दे – this is said in Spanda also.

अवस्थायुगलं – the pair of states is styled here subjectivity and objectivity. The objectivity is perishable and the subjectivity is imperishable.

कार्योन्मुखः प्रयत्नो – Here only that effort ceases which is directed towards the objectivity. On the ceasing of that an ignorant person thinks "I am dissolved".

नतु योऽन्तर्मुखो भावः– Destruction is never possible to that inner nature which forms the abode of the attribute of omniscience, because '*vedya*' वेद्य is not found

अस्य योगिनः– for such a *yogi*.

सुखदुःखयोर्बहिर्मननम्।।३३।।

(sukhaduhkhayorbahirmananam)

Because such a *yogi* perceives the states of pain and pleasure only superficially, they in no case, affect his state of Supreme- Being consciousness.

वेद्यस्पर्शजातयोः सुखदुःख्योः बहिरिव नीलादिवत् इदन्ताभासतया मननं – संवेदनं, नतु लौकिकवत्, अहन्तास्पर्शनेन अस्यहि

स्वशाक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम्, इत्युक्तसूत्रार्थनीत्या सर्वं।

अहन्ताच्छादितत्वेन स्फुरति, न तु नियतं सुखदुःखाद्येव,

इत्येवं परमेतत्। योगी हि प्रशान्तपुर्यष्टक प्रमातृभावः कथं

सुखदुःखाभ्यां स्पृश्यते।

For such a Yogi the two states of pain and pleasure touched by the known are without the touch of the knower. He feels pain and pleasure like other objects blue etc. इदन्ताभातया मननं संवेदनं- he feels pain and pleasure with this consciousness. न तु लौकिकवत् – he does not feel pain and pleasure like ignorant people do. अहन्तास्पर्शनेन अस्य हि स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वं इत्युक्तसूत्रार्थनीत्या सर्वं अहन्ताच्छादिततेन स्फुरति न तु नियतं सुखदुःखाद्येव– To the contrary, this *yogi* feels "I am always in myself, the same in pain and pleasure". As explained in the Sutra 30 of this Awakening, "this whole world is for him the embodiment of his collective energies". So, for such a *yogi* this universe is the expansion of his own energy. This explanation makes us to understand that he feels this whole universe with I-consciousness and his individuality with this consciousness. If he were to feel his nature as an individual being then he would become happy and sad. इत्येवंपरमेतत् -- In this Sutras pain and pleasure is a metaphor for everything that exists in this world.

योगी हि प्रशान्तपुर्यष्टकप्रमातृभावः कथं सुखदुःखाभ्यां स्पृश्यते -- Because this *yogi* has ceased the attachment of his state, dreaming state and the state of deep sleep, how can he be touched by the two states of pain and pleasure?

तथा च श्री प्रत्यभिज्ञासूत्र विमर्शिन्याम् – In the commentary of Shri Pratyabhijna it is said:-

ग्राहक भूमिकोत्तीर्णानां वास्तव प्रमातृदशा प्रपन्नानां तत् तत् स्व हेतूपस्थापित सुखदुखः साक्षात्कारेऽपि न तेषां सुखदुःखादि। नोत्पद्यते

एव वा सुखदि हेतुवैकल्यात्, सहजानन्दाविर्भावस्तु तदा स्यात् – Those *yogis* who have crossed the state of individuality and have attained the supreme state of real being, although they feel pain and pleasure but these do not affect them at all. There is no apprehension that pleasure and pain will rise in them because the cause of that state is individuality, individuality has been destroyed by them. In feeling pleasure and pain they feel the real state of supreme bliss.

इत्युक्तं – The it has been said:-

अतएव इति स्पन्दे निरूपितं – this is explained in Spanda also --

न दुःख न सुखं यत्र न ग्राह्यं ग्राहको न च।

न चास्ति मूढ़भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः।।

Wherein no pain, no pleasure, no perceptible no perceiver exist and where even the state of insentiency does not find room, that in reality is the principle (Spanda). यतश्च उत्तीर्ण पुर्यष्टक प्रमातृभावस्य योगिनो नान्तः सुखदुःख-संस्पर्शः, अत एवासौ -- a Yogi who has crossed the individual state of I- consciousness is never touched by pain and pleasure. So he is:-

तत् विमुक्तस्तु केवली।।३४।।

(Tadvimuktastu kevali)

Hence he is liberated from the states of pain and pleasure and is uniquely established in his own nature.

ताभ्या– सुखदुःखाभ्यां, विमुक्तः– विशेषेण मुक्तः– संस्कारमात्रेणापि अन्तर् असंस्पृष्टः, केवली – केवलं चिन्मात्रप्रमातृतारूपं यस्य।

A *yogi* who is absolutely freed from those pleasures and pains, who is not touched inwardly even by mere impressions also, is described as "*kevali*", which means that he is established in the form of God–consciousness.

यदुक्तं श्रीकालिकाक्रमे:– As is said in Kalikakrama:-

सुख दुःखादि विज्ञानं विकल्पानल्प कल्पितम्।

भित्वा द्वैतमहामोहं योगी योगफलं लभेत्।।इति।।

The perception of pain and pleasure and the thoughts connected with it have come into existence by imagination. When a *yogi* overcomes this great illusion of duality actually he attains the real fruit of *yoga*.

तु शब्दो वक्ष्यमाणापेक्षया विशेषद्योतकः, एवमुत्तरसूत्रगतोऽपि एतत्सूत्रापेक्षया। In this Sutra the word *'tu'* is not meant for separation but to indicate supermacy i.e. to say that he is above the state of individuality.

Now the author will explain individuality in the next Sutra, but that is completely opposite of this state. तदाह– So it is said --

मोहप्रतिसंहतस्तु कर्मात्मा।।३५।।

(mohapratisamhatastu karmatma)

To the contrary, one who feels the absence of God-consciousness in the state of pain and pleasure is an individual soul and a victim of recurring births and deaths.

मोहेन– अज्ञानेन प्रतिसंहतः–तदेकघनः तत एव सुख दुःखाश्रयो यः पुनः कर्मात्मा नित्यं शुभाशुभ कलंकितः मोह means ignorance, प्रतिसंहतः तदेकघनः– who is constricted by this ignorance, this illusion, तत एव सुखदुःखाश्रयो यः being shrunk by illusion, he is a plaything of pain and pleasure. स पुनः कर्मात्मा नित्यं शुभाशुभ कंलकितः -- He is said to be the embodiment of action and as such he is stained by the good and bad result of this action.

तदुक्तं तत्रैव–Thus it has been said in the Kalikakramasutra --

यद्विद्यावृततया विकल्प विधि योगतः।

शिवादीन् नैव झटिति समुद्भायतेऽखिलान्।।

यदविद्यावृततया– having his God–consciousness covered by ignorance विकल्पविधियोगतः because of his differentiated perception of the universe, शिवादीन् नैव झटिति समुभ्द्भावयतेऽखिलान् – he does not feel the thirty-six elements (from Shiva to earth) of the universe in a supreme or universal manner.

ततः शुभाशुभा भावा लक्ष्यन्ते तत् वशत्वतः।

अशुभेभ्यश्च भावेभ्यः परं दुःख प्रजायते।।

Then only the states of good and bad शुभाशुभाभावा appear to him तद्वशत्वतः– because of his supreme state from the unfortunate state, extreme pain comes into existence.

(to be continued)

ABHINAVAGUPTA - A Study

(Continued from the previous issue)

By Moti Lal Pandit

The Nature of Liberation

Liberation and bondage are two opposite as well as contrasting entities. It is upon the negation of bondage that liberation is experienced. That which has the possibility of being transcended cannot at all be termed as being real, because the real, being indivisible, can never be negated. It means that actually liberation and bondage, from the ultimate standpoint, are not at all opposites. Were both to be treated as real, then we can never have the experience of liberation. Since none is actually real, it means that the so-called atomized individual exists always in the state of liberation. The problem lies in not recognizing the fact that bondage is not real. Were not the case such, then liberation would be an impossible goal to realize. Our experience, however, informs us that we do experience, even at the empirical level, freedom occasionally. It would mean that bondage as limitation is not absolute, and therefore real. Bondage or ignorance will be seen to be real to the extent one remains subject to empirical mode of understanding. Insofar as linguistic tools of analysis are made use of, we shall always be prone to contrast and compare it with liberation. Once empirical thought processes are transcended, ignorance by itself ceases to be, which means that it no more exists as a contrasting entity. It is upon its negation that it no more exists as an opposite of freedom.

The Trika Shaivism holds the view that the existence of bondage will continue to be to the extent our understanding of Reality is based upon misconceptions. The problem, therefore, is epistemological. The moment the epistemological confusion concerning the nature of Reality is removed, that very moment liberation from bondage is realized (ibid., 1. 156). As to how to gain access to knowledge that is absolutely correct concerning Reality is dependent to what extent we have succeeded in the practice of Shaiva-yoga. It is asserted that the practice of Shaiva-yoga terminates in the attainment of that epistemological state that is known as the state of *pratyabjina* or "recognition." It is a state of knowledge in which the essential nature *(svarupa)* of the Self *(atman)* is recognized as being non-different from the Absolute *(paramashiva)*. Also through this epistemic recognition is recognized the fact that the external world is nothing but the self-manifestation or emission (*abhasa, visarga*) of the Absolute (*Paramarthasara,* 48). Moreover, this epistemic recognition results in the realization that one's consciousness, which is essentially of the same nature as the Absolute, is not only limitless and infinite, but also omnipotent. An adept who has attained this state of recognition is termed as the one who is liberated-while-alive (*jivanamukta*) (Ishvara-pratyabjina-vimarshini,2.3.17). A *jivanmukata*, while living-in-the-world, is not however free from the impact of past deeds (*sancita-karman, prarabdha-karman*). He will have to reap the consequences of his deeds of previous existences till they are exhausted. To remain under the impact of *karman* would mean that he is not yet completely free from the limitations of bondage. Once the *karman* impact is exhausted, a *jivanamukta* realizes perfect identity with the Absolute, which means that he is now entitled to enjoy all the divine bounties. The state of perfect identity with the Absolute comes to be upon the abandonment of embodied existence, that is, after death. This absolute form of liberation is technically called the *videhamukti*, or liberation-upon-death (ibid.), *Ajivanamukta*, in contrast to a *videhamukta*, has no possibility of having the experience of divine omnipotence and omniscience on account being an embodied existent (ibid.).

There is, however, a higher state of liberation that a *jivanamykta* has the possibility of gaining as an embodied existent, and this state is called *samavesha*, or "submergence". This liberative state arises unexpectedly. In this state an aspirant has the perfect experience of identity with the Absolute. It is a state of experience in which the aspirant's consciousness, as it were, is seized by the Absolute. While being conscious of his individuality, the aspirant simultaneously experiences as if his individual consciousness is being transmuted into the Absolute (*Tantraloka,* 1.173-174). This experience of submergence of individual consciousness into the Absolute results in the recognition that the so-called individual consciousness is non-different from divine consciousness. The experience of submergence also terminates in the realization of supernatural powers (*siddhis*). For a *jivanamukta* of this type there are two courses open to him at the end of his earthly journey: He either chooses total absorption in the Absolute or he may incarnate himself as a supernatural being for the purpose of extending help to those who seek liberation. This latter course of action seems to be based upon the Bodhisattva model. It is a model that teaches the abandonment of desire

for personal salvation for the sake of others.

Apart from *jivanamukti* and *videhamukti*, there is another type of liberation, which is known as the *kramamukti* or "the graduated liberation". It is a liberation that is completely dependent upon the grace of the Lord. The grace, however, is such that it does not terminate in complete liberation from bondage. While practicing Shaiva-yoga, the aspirant does not develop such a spiritual capacity that will enable him to loosen, in one go, the grip of impurities. Upon death the aspirant of such a path has the possibility of entering the divine abode that corresponds to the spiritual stage he has attained prior to his death. Upon entering the divine abode he, with the aid of the presiding deity of the abode, may be able to eliminate all such impurities that bar him from gaining access to liberation. The aspirant, in a graduated manner, moves to different higher divine abodes, and ultimately reaches a state whereby he merges in the absolute (ibid., 13.244-45). This model, too, has an equivalent in the Pure Land Buddhism, which believes that salvation comes through faith rather than self-effort. Realizing the limitations of a human being, the Pure Land Buddhists arrived at the conclusion that the grace of Amitabha Buddha alone has the power of freeing man from his bonded condition. They who have faith in the saving grace of Amitabha enter, upon their death, in Western Paradise. As Amitabha is the presiding Buddha of this heavenly realm, so he enables his believers to arrive at the ultimate salvific state of *nirvana.* It is exactly what the Trika seems to be propounding in the context of its theory of *kramamukti.*

The Nature of Reality

Most of the Vedic schools of thought adhere to a philosophical viewpoint that may be termed as realistic pluralism. As realists, they believe in the reality of more than one entity. The oldest realistic school is that of Nyaya-Vaisheshika. This school of thought believes in the existence of several elements like atom, soul, mind, time, space, God and so on. The other realistic school is that of Mimamsa, or the school of "exegesis." Being a believer in strict realism, this school agrees with Nyaya on many points. The other realistic school is that of Samkhya Yoga, which believes in the eternal existence of matter *(prakriti)* and soul *(purusha).* Matter in itself is insentient. This insentient matter begins to evolve itself into the manifest categories of existence the moment there is disturbance among the three innate constituents of it, which are termed as peaceful (*sattva*), passionate *(rajas)*, and inert *(tamas)*. Due to the disturbance in the equilibrium of the constituents, one of the constituents dominates the other two. It is this disturbance that really provides the initial movement to primordial materiality to evolve itself into the manifest categories of existence. While undergoing the process of evolution, soul, which is non-objective and pure consciousness, somehow comes in contact with insentient materiality. As a consequence of this contact the soul thereby gets imprisoned in what is called embodied existence. While in the prison-house of matter, the soul's purity is not affected at all. It remains as pure as it was prior to its enlargement. The relationship between the soul and matter is of the same nature that occurs between an object and its reflection in a mirror. The involvement of soul with matter therefore is not real but apparent. The theory of the three constituents has also been interpreted in terms of qualities *(guna)* of an entity. The nature of an entity is either good, energetic or harmful. If seen from a psychological point of view, man's character is either good, active, or evil. In its application to ethics, the theory tells us that actions are either good, passionate or evil. The theory, thus, has influenced every aspect of Indian philosophical thinking. No school of Indian thought has escaped from the far-reaching influence of the Samkhya philosophy. Vaishnavism and Shaivism of the South also follow this realistic pluralism of the Samkhya.

Buddhism as a heterodox school of thought does not at all encourage any kind of search for a metaphysical reality. The early Buddhists were not only realists, but were analytically realists. As realists they believed in the existence of elements. As empiricists, they rejected the existence of such entities that could not be verified empirically. For them the phenomenal exist but exist momentarily. Whatever there is, is of momentary existence. Insofar as human existence is concerned, it is simply a psycho-physical complex. No permanent entity like the self exists within man. Man is simply a bundle of ever-changing aggregates. As to how the world has come into existence, is due to the chain of causation. Thus the principle of first cause is eliminated once-for-all. Insofar as human subjectivity is concerned, it consists of factors that are as momentary as are the objective ones. Since this naive realism could not satisfy the inner yearnings of man, it was accordingly abandoned in favour of critical philosophy upon the emergence Madhyamaka school of thought. This school of thought was so radical that it neither affirmed nor denied the existence or non-existence of anything. Since nothing can affirmatively or negatively be said about Reality, it is better to remain silent. This silence concerning Reality was identified with the Buddha's Middle Way doctrine, which maintained the avoidance of extreme standing whether philosophical or ethical. Further, the Madhyamakas interpreted the avoidance of extremes as denoting the Buddha's theory of dependent origination (*pratityasamtutpada*). The thrust of this doctrine is that the phenomenal entities do not arise by themselves or through the

other. The arising of phenomenal entities occurs through the principle of interdependence. This doctrine of interdependence is graphically depicted in what is called the chain of causation. As phenomena arise interdependently, it means that they are destitute of an intrinsic nature (*svabhava*). That which is devoid of innate nature is, according to the Madhyamaka thinkers, identical with Emptiness (*shunyata*). Insofar as the Absolute is concerned, we can say nothing about it, as it transcends every mode of thought. It is Emptiness alone that indicates as to what the Absolute is. As both the Absolute and the world are identical with Emptiness, they thereby are non-different from each other, which means that *nirvana* and *samsara* are one and the same. This radical negativism, however, could not last for long, and accordingly a new school of thought came into existence, namely, the Yogachara school. The Yogachara school, being idealistic in orientation, endeavoured to harmonize the naive realism of early Buddhism with the critical philosophy of Madhyamaka. Instead of laying its eggs in the basket of Emptiness, the *yogacharin* postulated the existence of Mind-Only. Insofar as the world outside is concerned, it exists to the extent it is being perceived by the mind. The objective world is to be treated as a mere representation. Mind or consciousness, however, is as momentary as any other aggregate. Even this idealism of the Yogachara could not satisfy the religious yearning of an average Buddhist. Ultimately a kind of theism as well as philosophical monism was allowed to emerge. The theistic orientation gave hope to the ordinary believer that he has the possibility of gaining access to *nirvana*, whereas monism ushered in a philosophical outlook in terms of which each sentient being was seen potentially to be a Buddha.

The doctrine of momentariness is so universalized as to lead to the conclusion that no permanence can be established in any empirical category. The momentary existence of empirical categories also means that there is no permanent substratum that may be seen as the basis of change. Instead each empirical entity is generated in a moment and, while generating as its replica another entity, passes away in a moment, This process of momentary generation and destruction goes on endlessly. Nothing endures beyond a third moment. It is this perspective which the *yogacharins* have applied to consciousness. For them consciousness is as momentary as any applied to consciousness. For them consciousness is as momentary as any other empirical entity. The momentary existence of consciousness expresses itself in terms of mental states and physical entities. For the Hinayana Buddhists the momentary flow is of two kinds: (a) mind and mental states and (b) matter and material entities. Accordingly is inferred the conclusion that no metaphysical entity is to be found beyond the momentary flow of mind and matter. It is this view of flux or change that has prevented most of the Buddhists from embarking upon an ontological journey.

The sectarian Hindu religious schools uphold their own respective views concerning the nature of Reality. The Vaishnavite school of Vallabha claims to be monistic in orientation, yet on investigation the claim does not stand the logical test. Vallabha's philosophical views are closer to the views of another Vaishnavite thinker, namely, Ramanuja. Insofar as Veershaiva school is concerned, it is difficult to say as to what they mean by *samarasya*. The concept of *samarasya* is so ambiguous that we are unable to tell about the relation that occurs between the liberated soul and Shiva. Advaita Vedanta of Shankara, although monistic in its orientation, is not sufficiently theistic (See *Mandukya-karika*, 1.16-17).

The Trika Shaivism of Kashmir, while upholding monistic theism, thinks that the Absolute is the ontological substratum of all that is manifest. As Absolute, it is beyond the reach of empirical or rational categories of thought. The Absolute as transcendent can neither be explained nor expressed in terms of intellectual concepts. Whatever rational knowledge we may gather about the Absolute, it is always in terms of approximations. The Absolute is unnamable, and so we cannot speak of it as being Shiva or Shakti (Tantraloka, 2.24). Whatever linguistic or conceptual formulation we may formulate concerning the Absolute, it is never absolutely real or authentic (*Ishvarapratyabhijnavimarshini* 1.1.2). This is so because the intellectual formulations about the Absolute are always determined by the restrictions that space-time impose upon the intellect's capacity to know. As the Absolute is transcendent to the space-time continuum, so the intellect, which is transcendent to the space-time continuum, so the intellect, which operates within the framework of space-time, has no capacity or power to conceive as to what the Absolute is in itself (*ibid.*). It is this non-conceivable Absolute that is said to be the source as well as substratum of all that is manifest. Although undefinable in itself, the Absolute however has been defined as that is eternal and infinite I-consciousness. As the source of everything, the Absolute thereby is everything. Being identical with every manifest category, the Absolute thereby also shines in everything as everything. Although identical with every phenomenal category, it transcends them all.

Further it is asserted that the essential nature of the Absolute is its Godhead, that is, the Absolute is God by its very nature. By identifying the Absolute with Godhead, the Trika thereby favours theism. For this reason the Trika philosophy has been termed as being theistic monism.

"THE VISITATION"

*A Long Poem**

by Mohan Watal

So the days passed and the nights engulfed them,
And slowly and steadily the Wheel of Time
completed its first circle of His attainment of Mahasamdhi
And here we were just entering the twelfth month -- the fateful September
When last year our Gurudev's Jyoti became one with
the Jyoti of 'Amriteshwara
And we mortals were left alone
With gaped mouths and moist eyes
Looking for their beloved Shepherd.
Our beloved Shepherd had gotten into the Elysium Garden
To tend Shiva's sheep.
And we the dull flock lost in the wilderness of ignorance
And without the divine goad with which He used
to push us forth To graze.
And this was the month for us to remember what He used to do
on His Gurudev's Anniversary.
Thus we had been taught and we had been trained.
We had just to imitate the act, the way He did His Master's Day.
August went by and ushered in September
The preparations were started in humble but eager manner,
The preparation to sanctify the place of the *yajna*
By smearing with a mixture of water, earth and cow dung
And washing the twigs and roots of the sacrificial wood
for the *yajna,*
To kindle the eternally sacred fire of the *havan*
And also the provisions, the rice, the lentils
The barley seeds, sesame seeds and the other ingredients or the *samagri*
Lo and behold so much of this *samagri* in abundance was kept ready
By Him when He was in the body's bondage, the physical frame
And the dry fruits and so many other goodies and dainties for *ahuti*
The dates, the almonds and the lotus seeds, coconut fruit etc.
And also the picking of walnuts fallen down from His walnut tree
These small sized walnuts dotted down on ground and spread everywhere.

**This poem was written on 15th September, 1992 -- the first Mahasamadhi Anniversary of Swami Ji*

The serene and smiling, yet careworn faces of guru-sisters and guru-brothers
Working clockwise, everyone big and small, young and old
Junior guru-brothers and senior guru-brothers
Junior guru-sisters and senior guru-sisters
All in a waiting mode for the 14th- 15th September
To have His "Darshan" & feel the fragrant touch of His abode, the Ashram
And the seeming feel of His vibrations in His Ashram --
His Parmdham at Ishber, Nishat.
So with such gusto and gaiety of our hearts
The Day dawned and we were up at 3 a.m. of this celestial night
The devotees all freshened up by having their baths
And cleaning their bodies
To be ready to enter the *yajna mandap*
And like bees hovering over flowers we bee-lined to this *havan mandap*
All "bees" eager and mad to touch and kiss their flower.
The entry was announced .
We all entered the hall we call *havanshala*
Partitioned in two segments.
One square the *havan kund*
And the other section for the devotees to chant the mantras.
The *havan* area was all to be aglow with the holy fire
Amidst the chanting by the priests, scholars and beloved disciples of Swami Ji
Big and small , young and old , ladies and gentlemen, a mini crowd assembled
The workers and volunteers surveyed and re-examined their last day's work.
The items of the *havan samgri* were kept in promptly arrayed
In *thaals* and *chilamchis*,
As He used to when He was doing the same exercise for His Master Mehtab Kak.
He would call that day the Divine Day, the Blessed Day.
We also geared ourselves up to imitate His exercise for Him, our Master
Traditionally we called this day the 'Jag Day'
In the corner of the *havanshala* there was the big metal tub
A huge one filled up to the brim with a mixture of rice, barley, dry fruits,
Flowers and petals of marigolds, roses and chrysanthemums
Zinias, asters and salvias, green *belpatra*
So many hues and fragrances.
The scent so supreme and so solemn and so serene
And lo and behold :
A wonderful two-winged being, most beautiful and exuberantly pretty
With tiny wings of chequered design, unusually of a bigger size
And that too at that moment of the early morning came

and flew in from somewhere
And sat on this big tub full of *samagri*
All of us felt stunned and wanted to see what it was
What is this being and what is it doing?
All of us mistook it
To be something celestial or His messenger
But it was a beautiful butterfly of unusual size and stock.
A divine thing perched on its haven
Amidst this sense of mystery and awe-stricken
We saw this butterfly taking off after tasting the contents of the tub
And hovered over the *havan mandap*
Making one complete circle like one full *pradakshina*
And left this place from the proper exit door.
We saw this peaceful butterfly and bade it goodbye in silence.
The entire *havanshala* is open on all sides,
This divine messenger came from the side of Amrieshwara temple
And made its graceful exit form the door facing Swami Ji's Ashram
It completed one circle with supreme grace
Slowly it dissolved into the early and hazy light of the dawn
All of us looked to each other and our silence spoke volumes.
No word was spoken by anyone.
Who was this creature ? What was this butterfly ?
Each of us looked at each other in silence and ecstatic joy
And everyone had his or her meaning from this experience
And the dawn advanced into the day
The moon set and
God lost in the morning glow
The rush of work also geared up to full throttle and speed
Now the guests started rushing in
All were entertained with *kahva* tea with water-chestnut flour *puris*
And then all other dainties appealing to everyone's palate
Today was the first Samadhi Anniversary of our Master
And everyone's eyes were looking for something, for someone
All tired eyes and souls mutely craving for their Master's presence
And all were compensated by a supreme splendour
The vibrating grandeur of something that could not be explained
His invisible presence solaced everyone in his own way
Work in the kitchen was in full swing
Ladies were filling earthen plates (called *takoos*) with *kheer*
Some frying potatoes for the guests pouring in

The buzz was growing inside and outside the *havanshala*.
The *mandap* echoed with the sound of *shlokas*
Which rose and reached the heavens --
Divine vibrations !
The *havan* advanced to the middle of the day.
Hymns were being sung
Some people were lost in meditation with their eyes closed
But suddenly the serenity broke
A shriek , a loud cry broke the solemnity of the moment
What happened ? everyone was awe-struck and yelled
On such days called the Shraddha Day
The earthen lamp, the *tsong*
is supposed to be kept burning continuously without a break
At this particular moment what had happened ?
Suddenly the flame had dimmed and was just about to be burnt out
One devotee cried that the lamp was extinguished
Another devotee also rushed to the lamp to fill it up with ghee
Both these devotees were nearing the lamp with a matchstick to light it
And as they were about to lit the lamp
It blazed on its own !
The lamp was not extinguished
Probably the flame had gone into His abode to make obeisance to Him
And these two devotees looked at each other with wide and wild eyes
What was this? Where had the flame gone ?
How did it lighten up again ?
Both these devotees had their answers in their hearts
And both bowed to the lamp
The crowd of guests, devotees started pouring in
The civil, the military, people of all communities, men and women
All dedicated persons came to see and feel the celestial presence of Swami Ji
In his immortal form, invisible frame, divine personality
All offering their *shraddhanjali* by sitting in silent meditation
Some fixed their gaze on His casement facing northeast
Wherefrom He used to bless us all with His innocent smile
The smile was more subtle and sublime than that of Monalisa
Lord Shiva had carved Him and His grace and His smile on His visage
And everyone felt fulfilled by with His blessings and love.
Compassionate and kind He always was
And He always shall be to him who fully surrenders
Surrender is the key to achieve super-consciousrness

And the day passed on -- the Wheel of Time doesn't care
This Kalchakra grinds anyone, anybody who comes under its weight
Our Swami is special -- time bowed before His majesty
Now the finale of the *yajna* approached
The time of offering had arrived
The *pind pooja* had started
All stood up in respect with eyes closed
With handful of flowers, chanting *shlokas* -- the *Gurustuti*
for the love of our Mahaguru, our beloved Swami Ji
The day had been very hot, sweltering hot
And as the devotees were thus lost in reverie
A divine of breeze blew, touching the nape of everyone
Everyone's head turned, for they felt fans had been switched on
But there no fans, no *pankhas*
Yet the soothing coolness cooled everyone
Thus again everyone was blessed by His cool compassion
Not only in the *mandap* the atmosphere became refrigerant
Outside there was a rustle of leaves
Which store themselves away from the branches
and flew into the *mandap*
And dropped into the sacred flame of the *havan*
It seemed that each leaf wanted to offer itself in sacrifice
Purna ahuti was over and simultaneously the breeze stopped
No more leaves came in
A blessed calm and serenity prevailed
Where from did this breeze come?
And what were the leaves ?
Where they messengers of the Master ?
The silence was there in solemnity
Much was said by silence
And everyone from the core of the heart thanked His visitation
He was there
He had come
A butterfly,
And then the flame
And then the breeze
And finally the leaf
God bless our *Mahadeva* — our *Mahaguru*
And God bless us all.

कश्मीर शैवदर्शन–आधुनिक युग में इसकी उपादेयता

–प्रो० मखनलाल कुकिलू

यदि हम मानवजाति की ओर निष्पक्ष रूप से देखेगें तो यह स्पष्ट होता है कि मानवजाति आज के युग में अपने अस्तित्व के लिए कठोर संघर्षरत है और मानसिक शान्ति के लिए आकुल है। इस आत्मिक शान्ति को वह तनावपूर्ण जीवनरूपी मरूस्थली में जल प्राप्ति के समान सौभाग्य का सूचक समझती है। सुरम्य और सौहार्दपूर्ण वातावरण में हम कैसे रहें इस ध्येय को पाने के लिए हमें अपने ऋषियों और सन्तों की दैनिक क्रिया और जीवनचर्या का भली-भांति अवगाहन करना पड़ेगा। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे आधुनिक युग के असाधारण बुद्धिजीवियों तथा उच्चकोटि के वैज्ञानिकों की विचारधारा में भी आध्यात्मिक तथ्यों के पर्यालोचन तथा उनकी महत्ता का प्रतिबिम्ब दिखने को मिल रहा है। कश्मीर शैवदर्शन के सिद्धों ने भी कई ऐसे सत्य संसार के सामने रखे हैं जिन्हें आजकल के भौतिक शास्त्रियों ने भी महान् वैज्ञानिक तथ्य के रूप में स्वीकारा है। कश्मीर शैवदर्शन के ऐतिहासिक साक्ष्य को टटोलते हुए हमें मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से जो सामग्री मिली सर जॉन मार्शल के अनुसार हमें इस बात की पुष्टि होती है कि शैवमत का इतिहास पाषाणयुग अथवा उससे भी प्राचीन है तथा वह विश्व का सबसे प्राचीन दर्शन है। जहां तक इस शैव आंदोलन का प्रश्न है यह 3000 ई. पू. भारत में विद्यमान था। भारत में विभिन्न कालों में अनेक शैवागम सम्प्रदाय प्रकट हुए इनमें ''महापाशुपत'' अथवा ''नकुलीश पाशुपत'' आन्ध्र प्रदेश में विकसित हुआ, ''शैव-सिद्धांत'' अथवा ''दक्षिण शैव सिद्धांत'' तमिलनाडु में तथा ''वीर शैवमत'' कर्नाटक में विकसित हुआ। शाक्तमत का प्रचार समय-समय पर भिन्न-भिन्न भागों में हुआ और कश्मीर शैवदर्शन का जन्म कश्मीर में हुआ। इस प्रकार हम देखते है कि आगम संस्कृति यद्यपि द्रविड़ संस्कृति है पर आर्य संस्कृति के साथ धीरे-धीरे मिलकर सारे देश में इसका विकास हुआ और शैवधर्म भारत के कोने-कोने में धार्मिक आंदोलन के रूप में पहुंच गया। यद्यपि विभिन्न प्रचलित धार्मिक परम्पराओं का इस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा फिर भी आगम संस्कृति की मूल भावना सर्वत्र समान रूप से सभी सम्प्रदायों में विद्यमान रही। इन सम्प्रदायों में प्रत्येक अपनी कुछ विशेषता लिये है और प्रत्येक का अपना अलग साहित्य है। इन सम्प्रदायों के धार्मिक सिद्धांतों के स्त्रोत शैवागम अथवा शैवतंत्र थे। परम्परा से प्राप्त इस आगम शास्त्र का श्री वसुगुप्त (ई. नवीं शताब्दी) तथा इनके शिष्यों ने, प्रचार किया तथा घाटी में व्याप्त बौद्ध प्रभाव को ध्वस्त तथा इससे जुड़ी विचारधारा को धीरे-धीरे निरस्त कर दिया। साहित्यिक दृष्टि से आठवीं सदी से लेकर कश्मीर का साहित्यिक गगन जिन प्रचण्डरश्मि वाले मार्तण्डों से लगभग छः सौ वर्षों के लिए प्रदीप्त रहा उनमें आचार्य वसुगुप्त, श्री सोमानन्द, आचार्य उत्पलदेव, श्री रामकण्ठ, श्री शंभुनाथ, लक्ष्मण गुप्त, आचार्य अभिनवगुप्त, क्षेमराज, योगराज आदि प्रसिद्ध है। इन मनीषियों ने अपनी प्रखर प्रतिभा से शैव दर्शन की बारीकियों का जिस तरह जनमानस में समझाने की पहल की उसका ज्वलन्त उदाहरण इनकी असाधारण रचनायें है जिनकी महत्ता आज तक उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। बौद्धमत की दार्शनिक धारा ने लगभग तीन शताब्दियों तक कश्मीर में अपना साम्राज्य स्थपित किया था। इससे प्रचलित शैवधारा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। शैवधर्म के अस्तित्व को खतरे में पड़ा देखकर भगवान श्रीकण्ठनाथ ने आचार्य वसुगुप्त को सपने में आकर यह आदेश दिया कि कश्मीर में हारवन के पास महादेव नामक पर्वत पर एक बड़ी शिला, जिसका मुंह नीचे होगा, पर शिवसूत्र खोदे पड़े है, आप जाकर अपने पैर से उस शिला को उलटाकर उन शिवसूत्रों का खूब प्रचार करो जिससे बौद्धधर्म धीरे-धीरे निरस्त होगा और घाटी में पुनः शैवसिद्धांत का प्रचलन होगा। आचार्य वसुगुप्त ने ऐसा ही करके इन शिवसूत्रों का प्रचार किया और भट्टकल्लट नामक इनके ही शिष्य ने इन सूत्रों पर टीका लिखी फिर श्री भास्कर ने इन का विस्तार पूर्वक विवेचन किया क्योंकि इन सूत्रों में गागर में सागर है।

महत्वपूर्ण आगम ग्रन्थ होने के नाते बहुत से विद्वानों ने इन पर अपनी लेखनी उठाई पर श्री क्षेमराज की विमर्शिनी नामक टीका विस्तृत और सारगर्भित है। इसमें अनेक उदाहरण अन्य आगमों और तंत्रों के दिये गये हैं जिनसे इसकी उपादेयता में वृद्धि हुई है। श्री सोमानन्द अद्वैत शैव दर्शन पर लिखने वाले पहले विद्वान थे जिन्होंने ''शिवदृष्टि'' नामक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। इनके प्रधान शिष्य श्री उत्पलदेव थे जिन्होंने अपने गुरु की रचना ''शिवदृष्टि'' की टीका की और साथ ही अनेक रचनाओं से शैवदर्शन को समृद्ध किया, जिनमें श्री ईश्वरप्रत्यमिज्ञा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस महान् ग्रन्थ की महत्ता इस बात से आंकी जाती है कि कश्मीर शैव दर्शन को प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से भी पुकारा जाने लगा। संस्कृतवाड्.मय में भक्ति स्तोत्र सैकड़ों मिलते है पर इनका लिखा हुआ ग्रन्थ शिवस्तोत्रावली बेजोड़ है। कारण यह कि यह स्तोत्रावली समावेशदशा से अभिभूत बने हुए कवि हृदय की भावगंगा है। इसमें भक्ति है, नम्रता है, विवशता है, करुणा है, उन्माद है, आर्त पुकार है, दैन्य है, ग्लनि है, अभीष्ट से शिकवा है और आत्मसमपर्ण है। ईश्वरप्रत्यमिज्ञा पर इन्होंने विवृत्ति नाम की टीका लिखी जिसका उल्लेख केवल अन्य शास्त्रों में मिलता है, पर पुस्तक अप्राप्य है। सिद्धित्रयी नामक तीन भिन्न रचनाओं में शैवदर्शन के क्लिष्ट सिद्धांतों पर खुल कर प्रकाश डालने का इन्होंने प्रयास किया। एक साधारण गृहस्थी होकर आचार्य उत्पलदेव ने अनुत्तर मार्ग में जिस चरमसीमा को पार किया वह अनुपम है।

कश्मीर शैवदर्शन महारण्य में आचार्य अभिनव गुप्त शैवदर्शन केसरी के नाम से विख्यात है। इनके प्राप्त ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण तथा सर्वातिशायी श्रीतंत्रालोक है जिसमें 37 आह्निक या volume हैं। यह सारे शैवआगमपरम्पराओं का एक आदर्शग्रन्थ है इसलिए आचार्यों ने इसे ''अशेषागमोपनिषत्'' नाम से भी पुकारा है। यदि कश्मीर शैवदर्शन का इसे Encyclopedia कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यह ग्रंथ आचार्य अभिनवगुप्त के बहुमुखीय व्यक्तित्व का एक आकर ग्रंथ है। कश्मीर शैवदर्शन त्रिकदर्शन के नाम से भी पुकारा जाता है। नर शक्ति 'शिवात्मकं त्रिकम्' अर्थात् जिसमें नर (जीव) शक्ति और शिव का समन्वय हो उसे त्रिक कहते है। अथवा नरात्मक शक्तिमता और शिवात्मकता के स्वरुप को क्रमशः प्रकट करनेवाले आणव समावेश, शाक्त समावेश और शैव समावेश ही त्रिक दृष्टि हैं। श्रीतन्त्रालोक में आचार्य ने इस त्रिक संदर्भ को अनके आह्निकों में उजागर किया हैं। इस त्रिक दर्शन को षडर्थ दर्शन भी कहते है। इसी त्रिकदृष्टि से वैयाकरणों का एकवचन, द्विवचन, और बहुवचन, अथवा अन्यपुरुष, मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष प्रभावित है। त्रिस्वर (ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत), त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) त्रिवर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु महेश), त्रिलोक (भूः भुवः स्वः या परा, परापरा, अपरा), त्रिनेत्र (दक्षिण, वाम, ललाटस्थ), त्रयीहुतभुजा (तीन अग्नि--गार्हस्थ्य, हवन, श्मशान), त्रिशक्ति (इच्छा, ज्ञान, क्रिया), त्रिपद्दी (गायत्री, जालधंर, कामरुप), त्रिब्रह्मा (नर, शक्ति, शिव अथवा इड़ा, पिंगला, सुषम्ना) ये सब या और भी जो कोई पदार्थ तीन प्रकार से नियम में बांधा गया है, वह इसी त्रिकदृष्टि के ही पोषक है। इसीलिए इस त्रिकदृष्टि के समर्थक आचार्य अभिनवगुप्त को प्रत्यभिज्ञावादी मानना युक्तिसंगत ही है। श्री मधुराज योगिन् जो इनके समीपस्थ शिष्य थे, इनकी सर्वाधिक महत्ता से प्रभावित होकर इन्हें श्रीकण्ठ के साक्षात् अवतार और दक्षिणामूर्ति का प्रत्यक्षस्वरूप मानते थे। यह सर्वविदित है कि हमारे सद्गुरु महाराज ईश्वर स्वरूप श्रीलक्ष्मणजू बीसवीं सदी के अभिनवगुप्त थे, जिसका प्रमाण हमें बीसों बार प्रत्यक्षरुप से मिला है। सद्गुरुनामावली में भी इस तथ्य का चित्रण ''अभिनवगुप्तायकाश्मीरिकाय'' के अंकन से स्पष्ट रूप से हुआ है।

कश्मीर शैवदर्शन और उस के कुछेक महान् विभूतियों का चित्रण करने के पश्चात् अब हम इस दर्शन की उपादेयता पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास करेंगें। कश्मीर शैवदर्शन संसार में रहकर सांसारिक भोगों से या ऐश्वर्यो से परे रहकर मोक्षसाधना का उपदेश नहीं देता है। पर इस दर्शन के अनुसार मुक्ति और भुक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। भोगों का आनंद लेने में ही मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है।

मोक्ष के विषय में आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं किः-

मोक्षोहि नाम नैवान्यः स्वरूपप्रथनं हि सः।

स्वरूपं चात्मनः संवित् नान्यत्-------।।

अर्थात् मोक्ष कोई आश्चर्यकारी असंभावित वस्तु नहीं है। मोक्ष तो अपने स्वरूप का विस्तार है और वह स्वरूप अपनी संवित्

(supreme consciousness) है और कुछ नहीं। इसी प्रसंग में आचार्य ने एक और स्थान पर कहा है कि-

मोक्षस्य नैव किंचित् धामास्ति न चापिगमनमन्यत्र।

अज्ञान ग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यमिव्यक्तता मोक्षः।।

अर्थात् मोक्ष का कोई निश्चित स्थान नहीं है ना ही मोक्ष प्राप्ति के लिए कहीं जाना होता है। अज्ञानरूपी बन्धन काटने पर जहां अपनी स्वरुप स्वातंत्र्यशक्ति का साक्षात्कार हो जाय, वही तत्त्वदृष्टि से मोक्ष है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस दशा में साधक को ज्ञान रूप क्रिया का और क्रियारूप ज्ञान का स्वातन्त्र्य हो वही यथार्थ मोक्ष कहलाया जायेगा अर्थात् जहां समाधि और व्युत्थान दोनों में पूर्ण स्वरूपस्वातन्त्र्य साम्राज्य प्राप्त हो जाये वही शैवदर्शन में मोक्ष कहा गया है। इसी का दूसरा नाम स्वरूपस्वातन्त्र्य दशा है। इस प्रकार जब एक साधक भोग या ऐहिक सुख साधनों में लीन रहकर भी यथार्थ तत्व की ओर अभिमुख रहे तो उसे इन सुख साधनों की कालिख कलंकित नहीं कर सकती है। वह इन साधनों में भी आराध्य तत्त्व का ही आराधक बना दिखता है। अतः यह कश्मीरदर्शन भोगों पर प्रतिबन्ध न लगा कर मुक्ति के वास्तविक मर्म की ओर उन्मुख रहने का निर्देश देता है। इसी लिए हम यह अनुभव करते हैं कि शैवदर्शन के महान् आचार्य गृहस्थी होके भी परमोच्च दशा का भागी बन पड़े। आचार्य उत्पलदेव गृहस्थ में रहकर, गृहस्थ का सुखभोग कर भी शिव सायुज्य को प्राप्त कर सके। श्री सोमनंद और उन के पांच पूर्वज गृहस्थी थे। स्मरण रहे कि आचार्य उत्पलदेव उनके ही पुत्र थे। भट्टकल्लट पूर्ण गृहस्थी थे, नरसिंह गुप्त जो अभिनवगुप्त के पिता थे, पूर्ण गृहस्थी थे। इस प्रकार इन मूर्धन्य आचार्यों ने यह स्पष्ट किया कि केवल वैराग्य या संन्यास से वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सकता अपितु गृहस्थ में रहकर सुख भोग से वंचित न होने के साथ-साथ स्वात्मलाभ से लाभान्वित होने के लिए कमर कसकर अभ्यास करना है। इसीलिए इन्द्रिय संयम आदि यम नियम जो भारत में बहुचर्चित रहें वे कश्मीर के सिद्धों में उतना आदर न पा सकें।

कश्मीर शैवदर्शन की आधुनिक युग के लिए उपादेयता इसलिए भी है क्योंकि यह जिस पथ पर चलने के लिए सारे साधकों को प्रेरित करता है वह पथ कोई विशेष मार्ग न होकर अपने ही शरीर को सत्ता देनेवाला श्वासोच्छास का मार्ग है। सांस लेने की और सांस छोड़ने की प्रक्रिया में सावधानता बरतना ही परम लक्ष्य का मार्ग है। प्राण और अपान इस दशा में अत्यन्त सूक्ष्म हो जाते है जिससे इनकी गति का कुछ भी पता नहीं चलता कि उसे प्राणापान का संचार होता है कि नहीं। इसी प्राणसंचार साधक को सन्धिस्थान (junction of the two or meeting points of the two) पर सजग रहना चाहिए। इन्ही दो सन्धियों पर बार-बार अनुसन्धानपरता से साधक स्वरूप साक्षात्कार को पा लेता है। इस प्राणसंचार में 'हंस हंस' मन्त्र का जप दिन रात २१६०० बार स्वतः चलता है। क्योंकि ''स'' की ध्वनि प्राण वायु के हृदय द्वादशांत से बाहिर निकलते समय और ''ह'' की ध्वनि अपानवायु के बाह्य द्वादशांत से हृदय धाम तक जाते समय, निकलती है। इस प्रकार यह हंसः में परिवर्तित हुआ स, ह का अजपाजप अनथक रूप से चलता रहता है। इस कार्य को सिद्ध करने के लिए साधारण व्यक्ति को कोई विशेष तैयारी करनी नहीं पड़ती है ना ही किसी व्यक्ति विशेष की सहायता ही लेनी पड़ती है। इसी के फलस्वरुप थोड़े ही समय के अभ्यास से साधक को प्राणसंचार का धीरे-धीरे चढ़ाने और उतारने का अभ्यास स्वाभाविक बन जाता है और दिन रात फिर ऐसा करने से उसे अपने स्वरूप का साक्षात्कार होता है और स्वात्मास्थिति से किसी भी अवस्था में वंचित नहीं रहता। इस प्रकार बिना किसी अभ्यास के, बिना किसी उपक्रम के साधक की साध पूर्ण होती है।

कश्मीर शैवदर्शन कोई विशेष धर्म न होकर एक ऐसा साधन है जो सर्वजनसाध्य है। यह किसी विशेष सम्प्रदाय के लिए नहीं बना है, विशेष वर्ण, धर्म, जाति और देश के लिए इसकी उपादेयता न होकर संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह ग्राह्य है। वास्तविक रूप से समझा हुआ यह दर्शन आधुनिक विचारकों की चिन्तनधारा को नई दिशा प्रदान करने में सक्षम है। एकत्व में जगद्रूपता और परिवर्तनशीलता में नित्यता के तत्त्व को देखना ही इस दर्शन का प्रयास है। यद्यपि भारत जैसा चिन्तनप्रधान देश, सिद्धों, ऋषियों, संतों और योगियों के लिए, उर्वरा भूमिखण्ड के रूप में सदियों से रहा है पर इस कश्मीरदर्शन की महत्ता और ओजस्विता ने इस धरा को और भी महनीय बनाया। आजकल के संघर्षपूर्ण जीवन के लिए कश्मीर

शैवदर्शन का यह संदेश समयानुकूल है कि उस परम सत्य को पाने के लिए हमें अनके प्रकार की यातनाओं को झेलने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि पाना हमनें कुछ भी नहीं। यह पहले से ही हमने पाया है। यह संवित् रूप में विश्व के कण-कण में व्याप्त है। इसे सिद्ध करने के लिए हमें प्रमाणान्तरों की कोई आवश्यकता नहीं। संसार का कर्त्ता स्वतंत्र है, वह "कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्थ:" अर्थात् वह बनाने में, बिगाड़ने में या अन्य उलट-फेर करने में पूरी तरह से समर्थ है। वह किसी की सहायता पर निर्भर नहीं है। संस्कृत भाषा के व्याकरणकार श्री पणिनि ने कर्ता की परिभाषा देते हुए कहा है कि "स्वतंत्र: कर्ता" अर्थात् कर्ता वह होता है जो स्वतंत्र हो परमुखापेक्षी न हो। कर्ता की यह परिभाषा कश्मीर शैवदर्शन की परमसत्यता का पूर्व रूप से दिग्दर्शन करती है। स्वातन्त्र्यवाद इस दर्शन का प्राण है। हमारे सद्‌गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू कहा करते थे कि पाणिनि परिपूर्ण रूप से शैवी थे, क्योंकि उन्होंने चौदह सूत्रों में से "अइडण्" सूत्र पहले लिखकर यह सिद्ध किया कि 'अ' यह पहला स्वर ही सभी भाषाओं का आदि वर्ण है। यही अनुत्तर है अर्थात् जिसका कोई सानी नहीं है। यही वेदों और आगमों का सार प्रणव का प्रथम अक्षर है। मातृकाचक्र का भी यही आदि वर्ण है। यह तो हममें सर्वदा सर्वश: व्याप्त है। केवल अनुसंधानपरायणता की आवश्यकता है। यह अनुसंधान न कोई चिन्तन है, न कोई अनुशासन है और न कोई स्वभाव है। इस अनुसंधान का अभ्यास नहीं किया जाता क्योंकि यह क्षण-क्षण प्राप्त किया जाने वाला जागरण है। इस विषय में कहा गया है कि-

अयं रस: येन मनागवाप्त:

समाधि चेष्टा निरतस्य तस्य।

समाधि योग व्रत मंत्र मुद्रा

जपादि चर्या विषवत् विभाति।।

अर्थात् इस अनुसंधान परायणता की रसानुभूति जिसे ज़रा भी हुई, स्वतंत्र चेष्टा में निरत बने हुए उस साधक को, समाधिधारण, योग सेवन, व्रतपालन, मंत्र उच्चार, मुद्रा ज्ञान, जप आदि क्रिया विष-तुल्य दिखती है। अर्थात् उसे इन बाह्य क्रियाओं में तनिक भी आनन्द नहीं आता है। ऐसा साधक फिर बाहरी पुष्प आदि सामग्री को एकत्रित करके पूजा करने नही बैठता। स्वतंत्र निर्मलस्वरूप चिदात्मा भैरव के साथ जहां भेदप्रथा रूप पदार्थ-समूह की एकता की जाती है, वही वास्तव में उसकी यथार्थ पूजा है। ऐसे साधक के लिए बाहरी स्नान शुद्धि संवित् पर बाहिर से पानी के घड़ों के उड़ेलने से क्या हो सकता है। यदि इन बाहरी स्नानों आदि से पवित्रता आ सकती है तो "यदि मुक्ति जल स्नानात् मत्स्यानां सा न किं भवेत्" अर्थात् यदि जल-स्नान से मुक्ति होती तो मछली आदि जल जन्तुओं की मुक्ति क्यों नहीं होती जो रातदिन पानी में ही वास करती है और पानी ही जिन का जीवन है। इस प्रकार यह दर्शन वर्तमान प्राणियों को सावधान करता है कि बाह्य पूजा आदि पर बल न देकर आभ्यन्तर तत्त्व के परिशीलन में ही निमग्न रहो।

भौतिक आकर्षणों से व्यस्त और व्याकुल बने हुए जीवों को, कश्मीर शैवदर्शन इन प्रेरणाप्रद शब्दों से सचेत करते हुए समझाता है:

संसारोस्ति न तत्त्वतस्तनुभृतां बन्धस्यवार्तैव का ।

बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्ति क्रिया ।।

मिथ्यामोहकृदेष रज्जुभुजगच्छाया पिशाचभ्रमो ।

मा किंचित् त्यज मा गृहाण विलस स्वस्थो यथावस्थित:।।

अर्थात् सारे शास्त्र संसार को असत्य कहते हैं, जब संसार तात्त्विक दृष्टि से ही नही, तो बन्धन काहे का? जिसका बन्धन ही असिद्ध है उसकी मुक्ति की बात करना बेकार है अर्थात् जीव तो मुक्तात्मा है उसे मुक्त बनाने के उपायों मे लगाना काहे की अकलमन्दी है? सही रूप में यदि देखा जाये तो बन्धन या मुक्ति आदि की भावना व्यर्थ के मोह द्वारा पैदा की गई है। यह रस्सी पर सांप की भ्रान्ति या छाया में भूत के भय के समान आभास मात्र है। इसलिए सबके लिये एक ही राजमार्ग है जिस पर चलकर आधुनिक युग के तनावपूर्ण जीवन में सारे संसार के लोग कल्याण को प्राप्त कर सकते है। वह राजमार्ग है कि सर्वत्र परमशिव की व्याप्ति के आधार पर संसार में किसी पदार्थ के त्याग की बात या किसी में ग्रहण की आसक्ति नहीं होनी चाहिए। स्वात्मभाव में जिस रूप में

हो, रहो और सदा स्वात्मशिवतव का अनुसंधान कर प्रफुल्लित रहो। आधुनिक युग के योगी स्वर्गीय जे. कृष्णमूर्ति ने अपनी पुस्तक "The First and Last Freedom" में कहा है कि उन्होनें 'मा किंचित् त्यज मा गृहाण' इसी मंत्र की साधना की। उन्होनें इस भाव को "choiceless awareness or an awareness which is not of thought" कहा है। इस प्रकार "non-interference" के भाव में और Zen के "let go" भाव में और जे. कृष्णमूर्ति के "choiceless awareness" में हमारे शैवदर्शन के शाभंवोपाय की ही झलक मिलती है। आधुनिक युग में शैवदर्शन की उपादेयता क्यों अन्य दर्शनों से महत्त्वपूर्ण है इस सत्य पर चर्चा करते हुए शैव दर्शन ने हमें 'हेयोपादेय विज्ञान' का सिद्धान्त सामने रखा है। यह 'हेय' है अर्थात् इसका त्याग करना चाहिए, यह 'उपोदय' है इसको ग्रहण करना चाहिए, ये दोनों विचार भेदवाद पर आधरित है। हमें न किसी को हेय या त्याज्य मान कर उसका त्याग करना चाहिए और न उपादेय या ग्रहण करना चाहिए। हमें इन दोनों से निरपेक्ष होकर, तटस्थ होके निर्विकल्प में लीन होने का अभ्यास करना चाहिए। अपनी बुद्धि को वैचारिक संक्रमण का शिकार बनने नहीं देना चाहिए, भेद जन्मदाता मुख, शरीर या चरण आदि का, अथवा किसी ऐसी घटना का ध्यान ही नहीं करना चाहिए तथा किसी धारणा के बन्धन में, या भावना के प्रवाह में बहना नहीं चाहिए। कितना सर्वसमयोपयोगी और सर्वजनग्राहय मौलिक उपदेश है यह आचार्य अभिनवगुप्तपाद का।

भारत के मान्य अन्य दर्शनों में निष्काम कर्मयोग के विषय में जो धारणा है कश्मीर शैवदर्शन उनके पक्ष में नहीं। इस दर्शन के अनुसार कर्मयोग का तात्पर्य है yoga in action यह क्रिया योग ही उच्चयोग है। योग की विशेषता एकाग्रता या अनुसन्धानपरायणता में है जिसे अपनी वैयाक्तिक सत्ता में, अथवा परावाक् में एकाग्रता, मध्यमावाक् में एकाग्रता की विवृद्धि और वैखवरी वाक् में भी एकाग्रता का समुन्नयन है। इस क्रियायोग को समझाते हुए हमारे सद्गुरु महाराज श्रीलक्ष्मणजू कहा करते थे कि जब हम बस में बैठे सफर करते है या जब हम सड़क पर चलते हैं, हमें मौन रखना चाहिए, चुपचाप सड़क पर चलना चाहिए या चुपचाप बस में सफर करना चाहिए। किसी के साथ सम्भाषण में न लगकर, केवल अपने अभ्यास में लीन रहना चाहिए। यह क्रियायोग बहुत ही शक्तिशाली है। मानिये आपने इस प्रकार का अभ्यास पन्द्रह मिनट के लिए किया हो तो इसका फल आपको अपने साधनाकक्ष में नियत रूप से एक साल तक अभ्यास करने से प्राप्त होगा। क्योंकि इस प्रकार का अभ्यास आपकी साधना विधि को और अधिक सुदृढ़ और ठोस बनाने में समर्थ होता है। प्रातःकालिक भ्रमण के पश्चात् जब आप अपने साधना कक्ष की और लौटोगे तो वहां स्वतःसिद्ध ही आप योग की परादशा में प्रवेश पावोगे बशर्ते कि आपकी साधना इस क्रियायोग में स्वयंसिद्ध और व्यवच्छेद रहित हो। अन्यथा उपरोक्त साधना सफल नहीं होगी। जब हम क्रियोयोग का वैखरी वाक् में होने का दर्शन करते है तो इसमें हमें बातें करने में, हंसने में, और अन्य सारी दैनिक क्रियायों में स्वरुपस्थिति का आभास होता है। इस प्रकार का क्रियायोग तब तक संभव नहीं जबतक कि वैखरी वाक् से पूर्व की दो दशाओं का रसास्वादन न किया हो। इस स्थिति का क्रियायोग कलाविद् को ऊंचे शिखर तक पहुंचाता है।

कश्मीर शैव दर्शन की व्यावहारिकता पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि इस दर्शन के अनुत्तर मार्ग में पूजा, पूजक तथा पूज्य, अथवा स्तोता, स्तोत्र व स्तुत्य रूप भेदमार्ग का तिरस्कार कर इन तीनों के समन्वय में स्थितप्रज्ञ रहना चाहिये। यह बात ही नहीं है कि इस मार्ग में किसने क्यों और कैसे प्रवेश करना है या कैसे छूटना है। यदि हम यह कहें कि यह माया है तो वह माया भी अद्वैत चित्प्रकाश के बिना या उससे अलग होकर ठहर ही नहीं सकती। ये सारे उपाय निर्मल स्वात्म अनुभव रूप ही हैं फिर व्यर्थ में हमें किसलिए चिन्ता करनी है। स्नेह-वैर, सृष्टि-विनाश, हर्ष या विषाद आदि भाव स्वात्मरूप जगत् से भिन्न नहीं, अपितु ये उसके ही स्वभाव हैं। जिस रूप या जिस भाव को देखकर आप उसके साथ लीन होते हैं उसे संवित् स्वरूप ही जानो और उसी भावना से सारे व्यवहार करो। हमें अद्वैत भावना से संसार के सभी पदार्थों के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिए जिससे हम उसी रंग में रंग जायेगें। इसी साधक को इस दर्शन में 'परजीवैक्यधर्मज्ञः'' कहते हैं।

कश्मीर शैव दर्शन की यह मान्यता है कि हमारे संवित् दर्पण से ही जगत् सम्बन्धी सारी धारणाओं की उत्पत्ति होती है। हमारे चित् दर्पण से अलग इनकी सत्ता ही नहीं है। अहं परामर्श की सुदृढ़ता के सवरूप आनन्दातिरेक का प्रादुर्भाव होने से देहाभास तथा उससे

सम्बद्ध अन्य संकल्प-विकल्प परम्परा का विलय होता है और ''प्रसरतिपरमानन्द:'' का उदय होता है। जैसे नमक की डली को जिस ओर चाटेंगे उस ओर नमक के स्वाद के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा इसी तरह से उपरोक्त अवस्था में भी आनन्द के बिना अनुभूति किसी की नहीं होती है। आचार्य उत्पलदेव के अनुसार इसी आनन्दावस्था में-

''न सदा न तदा न चैकदे-

त्यपि सा यत्र न कालधीर्मवेत्।

तदिदं भवदीय दर्शनं

नच नित्यं नच कक्यतेन्यथा।।

अर्थात् सदा, तदा, एकदा आदि काल कलना का ज्ञान इस अवस्था में नहीं रहता है।

कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार परमशिव पंच कृत्यकारी माने जाते हैं। ये पांच कृत्य हैं- सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान या तिरोधान, अनुग्रह। सृष्टि शब्द की व्युत्पत्ति सृज् धातु से हुई है, जिसका अर्थ उत्पन्न करना या निर्माण करना नहीं है, जैसाकि सामान्य अर्थ किया जाता है, अपितु इस दर्शन में सृज् का अर्थ अपने से बाहर निकलना है। निमार्ण करने की अवस्था में बाहरी साधनों की अपेक्षा के बिना वह अपनें में ही स्थित विश्व को अपने से बाहर निकाल कर इस स्थिति का आनन्द लूटता है अत: सृज् धातु का अर्थ है "to enamate"। इसी प्रकार संहार का अर्थ भी "destruction" न होकर यह है कि जो संसार परम शिव ने अपने से बाहर निकाला, उसी को पुन: अपने में समेटने का नाम संहार है। कहा भी है "world is not a creation but an emanation", संहार "is not destruction but it is reabsorption" स्थिति। परमशिव का रक्षात्मक और पिधान स्वरूप गोपनात्मक और अनुग्रह स्वरूप प्रथनात्मक कृत्य है। ये पंच कृत्य परमशिव के कर्म हैं। ये क्रिया नहीं। क्योंकि क्रिया परमुखापेक्षी होती है जब कि कर्म नहीं। परमशिव स्वतंत्र है उसे किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रहती जबकि एक साधारण व्यक्ति अस्वतन्त्र है, उसकी प्रत्येक क्रिया दूसरे पर निर्भर रहती है। इस पंचकृत्य के विषय में शैवदर्शन की मान्यता है कि सृष्टि स्थिति संहार, पिधान और अनुग्रहात्मक पांच कर्म परमशिव करके विश्व को पुन: प्रकाशित काने के लिए अनुग्रहात्मक कर्म करते है। इसी से विश्व की सत्ता प्राप्त होती है। स्मरण रहे कि परमशिव के कार्य कलाप को ''कृत्य'' की श्रेणी में रखा जाता है जबकि व्यक्ति के कार्यो को क्रिया की श्रेणी में रखा जाता है यही अन्तर है कृत्य और क्रिया में।

हमारे कश्मीर शैव दर्शन और वेदान्त दर्शन में कुछेक असमानतायें जो दृष्टिगोचर होती हैं वे साधारण होकर भी असाधरण सी लगती है। वेदान्तियों की धारणा है कि जीवत्मा की अभिव्यक्ति तभी होती है जबकि विश्वात्मा का प्रतिबिम्ब जीवात्मा की बुद्धि में पड़ता है। शैवदर्शन वादियों का कहना है कि यह धारणा भ्रान्त है क्योंकि विश्वात्मका तो पूरी तरह स्वच्छ, शुद्ध और पूर्ण है और जीवात्मा मलों से तथा आवरणों से आवृत है। बुद्धि में इतनी गहराई कहां कि वह विश्वात्मा का प्रतिबिम्ब धारण कर सके, यह तो विश्वात्मा ही है जो बुद्धि के प्रतिबिम्ब को ग्रहण कर सकता है। क्योंकि अधिक प्रकाश पुंज ही अपूर्ण प्रकाश को अपने में लीन कर सकता है। कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार जब परमशिव अपनी स्फुट इच्छा से अपने स्वातन्त्रय दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं तो इसी के परिणाम स्वरूप जगत् और जीवन का अस्तित्व उभर पड़ता है।

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'' कहकर इस दर्शन के वादी ब्रह्म को सत्य मानते हैं और संसार को मिथ्या, पर शैव दर्शन वादी कहते है कि यह ठीक है कि ब्रह्म या परमशिव सत्य है पर हम यह कैसे कह सकते हैं कि जिस जगत की उत्पत्ति उनसे होती है वह जगत् मिथ्या है, असत्यस्वरूप है। क्योंकि जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य भी होगा। अत: यदि हम जगत को मिथ्या मानें तो शैव दर्शन की यह धारणा कैसे सत्य होगी की सृष्टि सत्य स्वरूप और ठोस है क्योंकि शैवी धारणा के अनुसार जगत् में ऐसा कुछ नहीं जो असत्य है यहां तक, कि घास का तिनका भी संवित् स्वरूप ही है।

कई प्रामाणिक दर्शनों में कुण्डलिनी योग को अवरयोग साधना में लगे हुए साधकों की अभीष्ट वस्तु माना है, पर कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार कुण्डलिनी योग महत्त्वपूर्ण यौगिक प्रक्रिया है जिसमें पराकुण्डलिनी योग सर्वोच्च है और शिवसायुज्यदायक है, चित्तकुण्डलिनीयोग चेतना से सम्बद्ध है, और प्राणकुण्डलिनीयोग प्राणापान से जुड़ा है। कश्मीर शैवदर्शन की आधुनिक युग में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अन्य दर्शनों की तरह सीमित वर्ग के लिए या केवल ब्राह्मणों के लिए या केवल श्रोत्रियनिष्ठों के लिए ही

ग्राह्य नहीं है अपितु अन्य वर्गो के लिए, विशेष वर्ग जाति, आकार या वर्ग के लिए कोई आग्रह नहीं अपितु सर्वधर्मों के लिए इस पुस्तक का पन्ना खुला है। अन्य धर्मों में नारी के लिए जो प्रतिबन्ध रखे हुए है वे प्रतिबन्ध इस दर्शन में नहीं हैं। समस्त नर वर्ग के साथ समस्त नारी जाति भी स्वरूप साक्षात्कार के क्षेत्र में उतनी ही वांछनीय है जितना कि नरसमुदाय। आचार्य अभिनवगुप्त ने यहां तक कहा है कि साधना के क्षेत्र में नारी नर से कई गुणा अधिक थोड़े से समय में ही सिद्धि प्राप्त कर सकती है। उनके ही शब्दों में-

योक्ता: संवत्सरात्सिद्धि-

रिह पुंसामभयात्मनाम्

सा सिद्धिस्तत्त्वनिष्ठानां

स्त्रीणां द्वादशभिर्दिनैः।।

अर्थात् एक वर्ष में जिस सिद्धि को नरवर्ग प्राप्त करता है, उसी सिद्धि को तत्वनिष्ठ स्त्रियां बारह दिनों में ही प्राप्त करती हैं। अनुसन्धानपरायणता और एकाग्रता के लिए स्त्रियां प्रसिद्ध हैं। यह अनुसंधान परायणता (self awareness) ही प्रत्यवमर्श (consciousness) की आत्मा है। यही स्वतः उदित परावाक् है और परमशिव का स्वातन्त्र्य है। यही स्फुरत्ता है, महासत्ता है जो देश, काल आकार आदि के घेरे से अनतिक्रान्त है। आचार्य उत्पलदेव ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' में इस अनुसन्धानपरायणता अथवा "चिति" के विषय में कहा है कि-

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता।

स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्य परमांत्मनः।। इत्यादि।

प्रकाश और विमर्श का सिद्धांन्त शैवदर्शन का उपयोगी सिद्धांत है। कहा है कि-

प्रकाशतामात्रं शिवस्यैव निजंवपुः।

प्रकाशः केवलं शिवः।। (तन्त्रालोक)

प्रकाशवपुरेवायं भासते परमेश्वरः।। (तन्त्रालोक)

प्रकाशो नाम यश्चायं सर्वत्रैय प्रकाशते।

अनपह्वनीयत्वात् किं तस्मिन्मानकल्पनैः।।

अर्थात् प्रकाशताही शिव का अपना शरीर है। उसके अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की सत्ता हो नहीं सकती। बाह्य या आन्तर वस्तुवर्ग सारा प्रकाशतामात्र है।

यह भेदवाद तथा अद्वैतवाद सब प्रकाशमान होने के कारण प्रकाश शरीर परमेश्वर है।

प्रकाश नाम से जो कुछ है वह शाशवत प्रकाश्मान है। वहां आदि वर्तमान अनजाने अर्थ का प्रकाशन अथवा विषय का अज्ञान आदि अनुभव की बातें नहीं है।

क्योंकि वह अनुभव भी प्रकाश रूप ही है। यह निरन्तर भासमान है। यह आदि सिद्ध है। इसे छिपाया नहीं जा सकता। इसमें प्रमाण कल्पना बेकार है। वह प्रकाश ही प्रकाशक प्रमाता भी है --परमेश्वर शिव है। शिव का एक ही स्वभावभूत धर्म अहं प्रत्यवमर्श है। उपायों के द्वारा शिव का भान नहीं होता। उपाय तो स्वयं उनकी कृपापूर्ण प्रसन्नता से भासित होते है। कहा है कि-

उपायजालं न प्रकाश्येत् शिवं

घटेन किं भाति सहस्रदीधितिः।।

प्रकाश का यह चमत्कार ही है कि न रहने पर भासित होना पर वास्तव में कुछ न होना है। इसी तरह शक्तिमान और शक्ति की भेदात्मक स्थिति का भी गोपन नहीं होता है, भेदभाव भासमानता के स्तर तक तो वास्तविक है पर अभेदसत्ता विकारहीन है।

विमर्श= तस्य देवातिदेवस्य परबोधस्वरूपिणः।

विमर्शः परमाशक्तिः सर्वज्ञ ज्ञानशालिनी।।

उस परमज्ञानस्वरूप देवाधिदेव की सर्वज्ञ ज्ञानशालिनी महान शक्ति ही विमर्शशक्ति है। यह विमर्श ही परमशिव का सार सर्वस्व हृदय और उसमें प्रवेश पाने का द्वार है। मयूराण्डरसवत् अर्थात् जैसे मोर के अण्डे के रस में विचित्र रंगों और आकारों सहित मोर रहते हैं वैसे ही यह समस्त संसार परमप्रकाशमय शिव की इस विर्मश शक्ति में रहता है। इस विर्मश पर ही संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार निर्भर है। विमर्श ही अहं चेतना है। शैवागमों में यही विमर्शशक्ति जगत् है जिसकी उद्भावना ३६ तत्त्वों द्वारा दिखाई गई है। आग में दाहिका शक्ति की तरह, सूरज में गरमी की तरह, जल में शीतलता की तरह प्रकाश और विमर्श एक दूसरे के साथ मिलें हैं।

अन्त में हम कह सकतें है कि कश्मीर की महीयसी मही से महनीया मुक्ति की धारा भारत पर बहुत समय के लिए बरसती रही और साधकों और विद्वानों के हृदय को अभिभूत कर बैठी क्योंकि आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार स्वात्म प्रत्यय के लिए शास्त्रों का गहन अध्ययन और उनका अनुशीलन सहायक होता है और स्वात्मविकास का संवर्धन करता है तथा संवित् का उदय होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि कश्मीर शैवमत केवल आध्यात्मिक प्रणाली न रह कर एक व्यापक जीवनदर्शन के रूप में विकसित हुआ तथा इसने समूचे बुद्धिजीवी चिन्तन को प्रभावित किया।।

GURUDEV ON MALINI

Malini (मालिनी) is that garland of elements, garland of letters, not from Shiva (शिव) to Shakti (शक्ति), not from Shiva to earth but garland of letters in such a way where Shiva is found everywhere, Shakti is found everywhere, individual is found everywhere. One thing in all things and all things in one thing. This is Malini. Matrika (मात्रिका) is not that. It is different. It is a separated class. In Matrikachakra (मातृकाचक्र) classes are separated. Class of Shiva is separated

from A (अ) to Visarga (:) - one class;

from Ka (क) to Pa (प) - another class;

from Ya, Ra, La, Va (य र ल व)- another class;

from Sa, Sa, Sa, (ष, श, स)- another class;

Ha (ह)- another class;

Ksha (क्ष)- another class separately.

But in Malini one would find everything everywhere.

So Malini is the only system in Shaivism which is accepted with great reverence and it is unknown. The tradition of Malinimantra is unknown till now. Abhinavagupta has not explained Malini because it was hidden. Because it was unknown to him also. It was unknown in words. Not unknown in expereince. He must have experienced this in Samadhi but he could not explain it in words. That is why Malini Vajayatantra has no commentary. Just to give slight touches of perception of Malini Vijayatantra he (Abhinavagupta) has produced Malini Vartika of his own but it is not the commentary of Malini Vijayatantra. Nobody on this earth has been able to comment on Malinivijaya because it is so high and so great that nobody has dared to touch it.

It is Malini because you find everything everywhere. You won't find Shiva in state of Shiva only but you will find Shiva everywhere. You will find Shakti everywhere. You won't find Shiva in the state of Shiva only but you will find Shiva everywhere. You will find Shakti everywhere. So it is some unique universal conduct of Lord Shiva. It can't be explained more vividly. Where Universe is found not only in Universe but in negation of Universe too; where Lord Shiva is found not only in the state of Lord Shiva but in absence of Lord Shiva too. When Lord Shiva is absent, Lord Shiva is experienced there. This is what is produced by the theory of Malini.

You must have noticed that in Amriteshvara temple also Malini is depicted as a garland.

(Revealed by His Holiness Swami Ji Maharaj at Ishvara Ashram in May, 1990 in the evening. Besides Sushri Sharika Ji and Prabha Ji, Mr. Johnathon and Vijay Kumar Kaul were also present).

STAVACHINTAMANIH OF BHATTANARAYANA:

Meaning of some shalokas as revealed by His Holiness Swami Laksmanjoo Maharaj

The Stavachintamanih is the work of Bhattanarayana. He was one of the most important Shaivite masters who lived a century ahead of Abhinavagupta. The title of the book 'Stavacintamanih' means hymns that are like the *chintamani* jewel- a fabulous gem supposed to yield its possessor all desires. Recitation of these Chintamni-hymns with devotion to Lord Shiva bestows His all-round grace and all the impurities vanish instantaneously.

प्रकाशमाने परमार्थभानौ

नश्यत्यविद्यातिमिरे समस्ते।

तदा बुधा निर्मलदृष्टयोऽपि

किंचिन्न पश्यन्ति भवप्रपञ्चम्।।१।।

prakashamane paramarthabhanau
nashyatyavidyatimire samaste
tada budha nirmaladrishtayo'pi
kinchinna pashyanti bhavaprapancham. (1)

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने।

चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासिने।।२।।

namah Shivaya satatam panchakrityavidhayine
chidanandaghanasvatmaparamarthavabhasine. (2)

अन्तः स्पन्दान्दोलनानन्दसंपद्-

बाह्यस्पन्दामन्दसंदोहिनीभिः।

संविद्धाराधोरणीभिः समन्तात्

सिञ्चन् विश्वं स्वात्मशंभुर्नमस्यः ।। ३ ।।

antah spandandolanandasampad-
bahyaspandamandasandohinibhih
samviddharadhoranibhih samantat
sinchan vishvam svatmashambhurnamasyah. (3)

नारायणः स्वहृदयाम्बुनिधेर्विवेक

भूभृद्विमर्दरभसोच्छलितं यदेतत्।

श्रीशंकरस्तुतिरसायनमाचकर्ष

तच्चर्वणादिह बुधा विबुधा भवन्तु।।४।।

narayanah svahridayambunidherviveka
bhubhridvimardarabhasochchhalitam yadetat
Srishankarastutirasayanamachakarsa
tachcharvanadiha budha vibudha bhavantu. (4)

Bhattanarayana has authored these hymns. What are these hymns? Very important to understand. These are actually the churning of *kshirasagara* (क्षीरसागर). These are actually the churning of *kshirasagara* (क्षीरसागर)[1] of God-consciousness.

नारायणः स्वहृदयाम्बुनिधे = Narayana (the author) wanted to

1. *Kshirasgara is the milky ocean controlled by Lord Shiva. Once all the gods went in a body and requested Lord Shiva that they wanted to churn this milky ocean to get the nectar. They prayed to Lord Shiva to grant them the boon. Lord Shiva was pleased and allowed the churning of Kshirasagara on the condition that whatever substance came out of churning would be accepted by them. The Gods danced with joy to get this boon. Kshirasagara being a big ocean, the Gods and the demons mutually agreed to churn the ocean together. They used the great mountain called Mandaraparvata as churner. Vasuki (वासुकी) the great serpent was put around the parvata (पर्वत) to be used as the churning of rope. One end of the serpent was held by the gods and the other by the demons. While undertaking the process of churning, the parvata started sinking by and by. They could feel that this big mountain would sink into the Kshirasagara. One end of the serpent was held by the gods and the other by demons. Thus confused, they again adored Lord Shiva for help, expressing their inability to churn the Sagara. Lord Shiva was pleased to ask Narayana to take the incarnation of Kurmadevata (कूर्मदेवता), a tortoise, for holding the Kshirasagara on his back till it was churned by gods and demons. Narayana thus took the incarnation of a big tortoise and held the Mandaraparvata on His back. Thus started the process of churning the Kshirasagara.*

churn the milky ocean of his heart. विवेकभूभृद् = Has put his awareness as churner to churn it. यदेतत् श्रीशंकरस्तुतिरसायनम् = By churning nectar appeared, which is 'eternal', which makes you immortal. That nectar is the hymns of this book. तच्चर्वणात् = By tasting that nectar (which the author has brought before us) let इह बुधा विबुधा[2], the enlightened ones, become the most enlightened.

सुगिरा चित्तहारिण्या

पश्यन्त्या दृश्यमानया।।

जयत्युल्लासितानन्द

महिमा परमेश्वरः।।5।।

sugira chittaharinya
pashyantya drishyamanaya
jayatyullasitananda
mahima parameshvarah. (5)

First, prostration before Lord Shiva to offer salutation (*Namaskara*) सुगिरा (*sugira*) = Supreme and beautiful word which चित्तहारिण्या (*chittaharinya*) = carries away mind along with its thoughts and all its motions. पश्यन्त्या दृश्यमानया (*pashyantya drishyamanaya*) = by looking at you with grace he creates unlimited cycles of ecstacy in you. Let that Lord Shiva be victorious by whose word your mind is annihilated along with its motions and by whose graceful look all your worries are gone. And what is that word ? That word is embodiment of awareness. It is "*spanda*" the silent and internal vibrating sound.

यः स्फीतिः श्रीदयाबोध

परमानन्दसंपदा।

विद्योदयोतितमाहात्मयः

सजयत्यऽपराजितः।।६।।

yah sphitah shridayabodha-
paramanandasampada
vidyodayotitamahatmyh
sajayatyaparajitah. (6)

Let that Lord Shiva be always victorious who is clearly found by the glory of 'श्री (*shri*) -- the wealth of consciousness; 'दया' (*daya*) -- the wealth of kindness, 'बोध' (*bodha*) -- the knowledge of God consciousness; 'परमानन्द' (*paramananda*) -- perfect and supreme ecstacy, and विद्योद्द्योतितमहात्मयः (*vidyoddyotitamahatmyah*) -- whose glory is enlightened/ put to strength by 'शुद्धविद्या' (*shuddhavidya*) -- supreme pure knowledge. Let that God consciousness be victorious all round and everywhere.[3]

प्रसरद्बिन्दुनादाय

शुद्धामृतमयात्मने।

नमोऽनन्तप्रकाशाय

शंकरक्षीरसिन्धवे।।३।।

prasaradbindunadaya
suddhamritamayatmane
namonantaprakashaya

2. बुधा mentioned to stress that this is book is meant for enlightened ones. By tasting this nectar they will further rise and become more enlightened.

3. These two Shlokas are just a prayer to Lord Shiva.

shankarakshirasindhave. ..3..

I bow to that शंकर (Shankara) who is just like milky ocean, where there are two flows of बिन्दु (*bindu*)[4] and नाद (*naada*). *Bindu* is I-consciousness and *naada* is the observation of I-consciousness. प्रसरद्बिन्दुनादाय (*prasaradbindunaadaya*) -- thus do *bindu* and *naada* move on unimpeded and I bow to that Lord Shiva who is filled with these two aspects and who is शुद्धामृतमयात्मने (*shuddhamritamayatmane*) -- embodiment of pure nectar[5]. नमोऽनन्तप्रकाशाय (namo'nantaprakashaya) -- He is the light of all lights. He is the light of all darkness, ignorance. Absence of light and presence of light have come out from that supreme light. I bow to that unbounded infinite light. शंकरक्षीरसिन्धवे (*Shankarakshirasindhave*) -- I bow to that Sankara who is just like the milky ocean.

4. *बिन्दु (bindu) is consciousness. नाद (naada) is realizer of this consciousness i.e. I am consciousness or I am God- consciousness. For instance, प्रकाश (prakasha) of the sun, the moon, the fire is bindu but there is no naada in it. There is no understanding power of prakasha in them. There is prakasha in Sun but it does not know that there is prakasha. It is just a planet because it has no understanding power. When there is understanding power, there is नाद (naada). बिन्दु and नादare both found in God-consciousness. In other lights only बिन्दुis found, not नादis understanding. Fire burns but it does not know that it is burning. Similarly light of the Sun and the Moon is totally ignorant of its nature. But in God- consciousness there should be both बिन्दुas well as ukn- According to 'शाक्तोपाय(shaktopaya), ज्ञान(knowledge) and क्रिया (action) ; and according to आणवोपाय(anavopaya) it is breathing in and breathing out or ingoing breath and outcoming breath. Inhaling and exhaling from anavopaya point of view; knowledge and action from shaktopaya point of view; and anu, prakasha and vimarsha from shambhavopaya point of view.*

5. *The purest form of nectar can be found in God-consciousness only. Other nectars could be found in gods who have become immortal by cherishing that in Heaven. But they enjoy the immortality only for a particular period. क्षीणेपुण्येमर्त्यलोकं विशन्ति (kshinepunyemartyalokam vishanti) After some time, say one billion years, they come down again to the world of mortals. The effect of that nectar in them vanishes. On the other hand the nectar cherished in the state of God-consciousness in Lord Shiva, is eternal, immortal nectar. It is real, pure nectar. It will never fade away. It will never vanish.*

योग का महत्त्व और भारतीय जीवन पद्धति

डॉ०जागीर सिंह

योग से अभिप्राय:

'योग' शब्द भिन्न-भिन्न विषयों अथवा क्षेत्रों में विशिष्ट अर्थ का द्योतक होने से अपना विशेष महत्त्व रखता है। व्याकरण की दष्टि से 'युज्' धातु से निष्पन्न होने वाला 'योग' शब्द संयोग[1] एवं समाधि[2] के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ज्योतिषशास्त्र में विविध ग्रहों के स्थान एवं समयविशेष में परस्पर मेल अथवा दृष्टि को 'योग' कहते हैं। आयुर्वेद मे विविध प्रकार के जड़ी-बूटियों के मिलान से बनने वाली औषधि विशेष योग कहलाती है। गणित शास्त्र में दो अथवा अधिक संख्याओं का जमाव 'योग' कहलाता है। ज्योतिर्विज्ञान में मुहूर्त, समय आदि के लिये तथा जातक के जीवन में घटित होने वाले प्रभाव विशेष का भी 'योग' कहा जाता है। लोक में काला जादू भी 'योग' अर्थ में प्रयुक्त देखा जाता है। इसी प्रकार, तन्त्रयोग, मन्त्रयोग, यन्त्रयोग, नाद योग, कुण्डलिनीयोग, भाक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि अनेक अर्थों में 'योग' शब्द का प्रचलन देखा जाता है। आजकल कुछ लोग 'योग' शब्द से केवल 'आसन विशेष' अथवा 'प्राणायाम' मात्र अभिप्राय लेते है। दर्शन शास्त्र में 'योग' मोक्षप्राप्ति का अद्विितीय माध्यम है, जिसके विविध प्रकार अथवा रूप हैं। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त-वृत्तियों का नियंत्रण ही योग है।[3] व्यास-भाष्य अनुसार 'योग' समाधि को कहते है।[4] ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य कहते है- 'जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ही योग है।[5] अथवा जीवात्मा और परमात्मा की साम्यावस्था ही समाधि है, जिसमें जीवात्मा की ब्रह्म में स्थिति हो जाती है।[6]

भगवान श्रीकृष्ण भी अर्जुन को उपदेश करते हुऐ समत्वभाव को ही 'योग' अभिहित करते हैं।[7] मुण्डकोपनिषद भी पुण्य-पाप की द्वैतमयी भावना से ऊपर उठकर परम साम्यता की शिक्षा देता है।[8] दक्ष स्मृति में कहा गया है- जीवात्मा का मन को वृत्तिहीन करके परमात्मा में एकाकारता का अनुभव ही मुख्य 'योग' है।[9] याज्ञवक्य स्मृति में आत्मदर्शन योग से ही सम्भव इसे परमधर्म कहा गया है।[10] बौधायन स्मृति में कहा गया है- 'योग से ही ज्ञान प्राप्त होता है, योग ही धर्म का लक्षण है, सभी गुण योग में निहित हैं, इसलिये सदा मुक्त (योगस्थ) रहना चाहिये।'[11] मालिनीविजयतन्त्र में जीवात्मा (पशु) और परमात्मा (पति) के एकत्व ज्ञान को योग माना गया है।[12] अद्वैत शैवदर्शन में 'योग' के लिये समावेश शब्द प्रयुक्त किया गया है, जिसका उत्पलदेवाचार्य अनुसार तात्पर्य है- 'अपनी चिदात्मा के यथार्थरूप कर्तृता (स्वातन्त्र्य विमर्श) एवं बोध (प्रकाश) की प्रगाढ़ता से अनुभूति और शून्यादि अनात्मरूप शरीर आदि की गौणता का ज्ञान करना[13] अर्थात् स्वात्मा में शैवी चैतन्यता (भैरवता, ब्रह्मता) का अनुभव करना ही योग है।[14]

योग एवं भारतीय जीवन पद्धति:-

योग की परम्परा सनातन एवं अति प्राचीन है और इसका उदगम स्रोत दैवी है।[15] इसीलिए यह अपने विविध रूपों में प्रामाणिक एवं तर्कसंगत है । मानवमात्र के कल्याणार्थ है। सभी प्रकार के दु:खों का निराकरण (निवृत्ति) स्वरूप है। इसी प्रकार भारतीय जीवन पद्धति भी

1. ''युजिर्योग इति संयोगार्थतमा परिपठिताद् युजेर्निष्पन्नो योगशब्द:''
   (पातञ्जल दर्शनम् सर्वदर्शनसंग्रहे, पृ० 673)
2. ''युज् समाधौ'' – पाणिनि धातुपाठ, दि० 71 आत्मने एवंच- तदेव, पृ० 675।
3. ''योगश्चितवृत्तिनिरोध:'' (पातञ्जलियोगसूत्रम् 1/2)
4. ''योग: समाधि:'' (व्यासभाष्य 1/1)
5. ''संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो:।।''(बृहद्योगियाज्ञवल्क्यम्)
6. ''समाधि: समतावस्था जीवात्मपरमात्मनो:
   ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधि: प्रत्यगात्मन:।।'' (बृहद्योगियाज्ञवल्क्यम्)
   ''एकत्वं योग उच्यते वस्तुनोऽयन्येन वस्तुना'' – मा० वि० ते० 4/4
7. ''योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गंत्यक्त्वा धनंजय।
   सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।'' गीता, 2/48
8. ''तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जन: परमं साम्यमुपैति'' –मुण्ड० उप० 3/1/2
9. ''वृत्तिहीनं मन: कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि।
   एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्यं उच्यते।।–दक्षस्मृति, 7/15
10. अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनाऽऽत्मदर्शनम'' – याज्ञ० स्मृ० 1/8
11. योगेनावाप्यते ज्ञानं योगोधर्मस्य लक्षणम्।
    योगमूला: गुणा: सर्वे तस्माद् युक्त: सदा भवेत्।।–बौधा० स्म० 3/27
12. ''एकत्वं योग उच्यते वस्तुनोऽयन्येन वस्तुना'' – मा० वि० ते० 4/4
13. (क) ''इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।'' भ० गी०, 4/1
    (ख) ''स एवायं मया तेऽद्य योग: प्रोक्त: पुरातन:'' – तदेव, 4/3
13. (क) ''तं विद्याद दु:ख संयोग वियोगं योगसंज्ञितम्'' – तदेव, 6/23
    (ख) ''युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मष:।
    सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।–तदेव, 6/28
14. ''किञ्चा जगत्यां जगत्। तेनत्येक्तेन भुञ्जीश्रा'' – ईशावास्योपनिषद्, 1/1
15. ''दुर्गापदाम्बुजसमाश्रितानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थएव शङ्कराचार्य

ऋषि-मुनियों एवं मनु जैसे महान् दैवी पुरुषों द्वारा प्रवर्तित है, जिसमें समय-समय पर देश, काल, वातावरण और परिस्थिति अनुसार तात्कलीन महापुरुषों ने अपने बहुमूल्य आदर्शों से लोक कल्याणार्थ महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यह जीवन पद्धति पूर्णतया सार्वभौम नैतिक मूल्यों पर आधारित है। इसकी नींव सत्यमार्ग पर रखी गई है। धर्मपूर्वक आचरण करना, और विशुद्ध उपायों से धन (अर्थ) उपार्जित करना, ऐसे धन से अपना परिवार, समाज और देश का कल्याण करते हुए जीवन निर्वाह करना (काम) तथा इस प्रकार इस लोक और परलोक को संवारना (मोक्ष) ऐसा भारतीय जीवन पद्धति का मूल सिद्धान्त है। धर्म, अर्थ और काम पुनः 'भोग' में समाहित किये जा सकते हैं। इस प्रकार सांसारिक भोगों को निष्काम भाव से भोगना तथा मोक्ष प्राप्ति करना जीवन का परम सत्य माना गया है। इस भोग और मोक्ष की सम्यक् प्राप्ति का अचूक माध्यम योग ही बतलाया गया है[16]। अतः योग भारतीय जीवन पद्धति का प्राण एवं जीवन है।

योग का विविध क्षेत्रों में महत्त्वः-

योग सार्वजनिक, सर्वकालीन एवं सार्वदेशीय है। अतएव सभी लोग इसे कर सकते हैं। कोई काल अथवा देश आदि की बाधा नहीं है। जाति, धर्म, आश्रम, वर्ण, भाषा अथवा मत-मतान्तर विशेष सभी के लिये अनुकरणीय है। किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव इसके अन्तर्गत नहीं है। यह सामूहिक रुप से भी एवं व्यक्तिगत अपेक्षा से भी सभी के लिये हितकर तथा लाभकारी है। एक अध्यापक, वैद्य, अभियन्ता, श्रमिक, साधु, गृहस्थी, दुकानदार, कार्मिक, किसान, व्यापारी, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष किंवा सभी वर्गों के लोगों के लिये अपने अपने विषय विषयक कार्य सम्पादनार्थ स्फूर्ति एवं समुचित सामर्थ्य प्रदान करने वाला है। दिन भर की चर्या से शरीरिक एवं मानसिक शाक्ति क्षीण हो जाती हैं, जिसको योग से पुनः प्राप्त किया जा सकता है। आलस्य, थकावट और दुर्बलता को दूर किया जा सकता है। सभी प्रकार के दुःख अथवा अक्षमताओं को दूर करने वाला होने से ही श्रीकृष्ण इसे निश्चय एवं तत्परतापूर्वक सदा करने के लिए शिक्षा देते हैं।

योग एवं शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यः-

सभी प्रकार के कार्यों के सम्पादनार्थ शरीर का पुष्ट एवं स्वस्थ अर्थात् नीरोग रहना आवश्यक है। शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयुर्वेद मानता है कि वात, पित्त और कफ के वैषम्य से रोग हाते हैं, जिसे सांख्य-योगी सत्त्व, रज और तम गुणों की विषमता बतलाते है। इसी से चित्त (मन) में विकार अथवा व्याधि को आश्रय मिलता है, क्योंकि मन का नाड़ी संस्थान पर नियन्त्रण होता है तथा उनकी क्रियाओं का शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसीलिये मन के चिन्तन का प्रभाव शरीर पर पड़कर उसे चिन्तन के अनुकूल सुखी या दुःखी अथवा स्वस्थ या बीमार होने पर बाधित करता है। योग का अभ्यास शरीर एवं मन दोनों को स्वस्थ रखता है। इसलिये यह स्वास्थ्य किंवा सुख का परम साधन है।[17]

जैसे वात, पित्त, कफ अथवा सत्त्व रज, तम को योग स्व अर्थात् अपने यथार्थ, 'स्थ' अर्थात् स्थान में रखकर शरीर एवं मन को स्वस्थ, (सुखी, नीरोग) रखता है, वैसे ही अभिनवगुप्त की अनुत्तराष्टिका अनुसार शाम्भव योग के अनुसरण से, जिसमें न कुछ शरीर अथवा मन से त्यागना होता हैं और न ही कुछ 'ग्रहण करना होता है, प्रत्युत् निर्विकल्प भाव से स्व अर्थात् अपने परमार्थस्वरूप आत्ममहेश्वर में 'स्थ' अर्थात् ठहरना होता है[18], अर्थात् शरीरदि के आत्माभिमान को त्यागकर शैवी चैतन्यता का अनुभव ही आध्यात्मरूप से स्वास्थ्य माना गया है, जो योग से ही सम्भव है।

योग, नैतिक मूल्य देश और समाजः

मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसे जीवन निर्वाह के लिये समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। अतएव प्रत्येक मानव के सम्यक् आचार-व्यवहार एवं सच्चरित्रता का सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। समाज की उन्नति से देश सम्पन्न एवं वैभवशाली बनता है। योग के आठ अंग अथवा साधन माने गये हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[19] पतञ्जलि कहते हैं कि इन योग साधनों के अनुसरण से चित्त की अशुद्धि का क्षय होता है और ज्ञानदीप्ति से प्रकृति-पुरुष विवेक होने

16. ''तं विद्याद् दुःख संयोगवियोगं योसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।'' - भ० गी० 6/23
17. ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''-
18. शरीर सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।
तथा सुखानां योगस्तु सुखानां कारणां समः।। चरकसंहिता, 1/55
19. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्योऽष्टावङ्गानि-पातञ्जलियोगसूत्रम्, 2/29

से पुरुष कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है[20] जो मानव मात्र का चरम लक्ष्य है। दूसरी ओर भौतिक दृष्टि से भी देखा जाये तो इनके अनुष्ठान से अतुलनीय लाभ व्यक्ति, समाज और देश को प्राप्त होता है क्योंकि इसका एक-एक अंग एक अमूल्य रत्न है। नैतिक मूल्यों के उत्थान के लिये यह सभ्य समाज एवं देश की सुदृढ़ नींव है। 'यम' से तात्पर्य है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।[21] आज विश्व भर में 'हिंसा' के भय ने मानवमात्र को संत्रस्त कर दिया है। कहीं जाति के नाम पर और कहीं धर्म आदि के नाम पर हत्यायें खून-खराबा और अत्याचार हो रहे हैं। योग "अहिंसा परमोधर्म:" की शिक्षा देता है।[22] प्राणिमात्र की रक्षा की बात करता है। परोपकार करना सबसे बड़ा पुण्य और दूसरों को पीड़ा देना सबसे बड़ा पाप बतलाता है।[23] इसी प्रकार मनसा, वाचा कर्मणा सत्याचरण आज भी उतना ही सार्थक है जितना प्राचीनकाल में माना जाता था। सत्यमार्ग का अनुसरण करने से ही विजय एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[24] आज के भ्रष्ट एवं मिथ्याचारी अधिकारी व नेतागण ही सर्वत्र समाज एवं देश विशेष के पतन के कारण देखे जाते हैं। ऐसे ही अस्तेय अर्थात् दूसरे के अधिकार की वस्तु बिना उसकी इच्छा स्वीकृति अथवा मुआवज़ा दिये चुरा लेना मना है।[25] ब्रह्मचर्य जहाँ एक ओर ब्रह्म चिन्तन की शिक्षा देता है, वहीं जितेन्द्रिय होने का लाभ बलवत्ता, ओजस्विता, तेजवत्ता के साथ-साथ रोगरहित व मृत्यु को जीतने वाला है।[26] आज जो जमाखोरी और कालाबाज़ारी हो रही है, उसका कारण अपरिग्रह का न होना ही है, अत: योग संग्रह करने की बीमारी से दूर रहने की शिक्षा देता है। योग का एक अंग शौच अर्थात् अन्त: बाह्य, मन-वाणी एवं शरीर की स्वच्छता पर बल देता है। संतोष के माध्यम से आत्मतुष्टि की बात करता है। तप के ब्याज से सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जय पराजय, शीत-उष्ण रूप द्वन्द्वों को सहने की शिक्षा देता है। स्वाध्याय -- आत्म पर्यवेक्षण अथवा सच्छास्त्रों के अध्ययन की बात करता है। ईश्वर प्राणिधान--सर्वशक्तिमान परमात्मा में विश्वास एवं भक्ति सहित आत्मसमपर्ण की महान शिक्षा देता है। इस प्रकार योग मानव मात्र के नैतिक मूल्यों एवं सच्चरित्र के अनुसरण से समाज व देश का सर्वतोमुखी विकास करने का अमोघ उपाय है।

योग, आसन और प्राणायाम:

योग में आसन और प्राणायाम का इतना महत्त्व है कि आज का समाज आसन अथवा प्राणायम को ही योग मानने लगा है। आसन जहाँ शरीर का विशेष प्रकार से विन्यास होता है, वहीं प्राण का नियन्त्रण प्राणायाम कहा जाता है। आसन अनेकं प्रकार के माने गये हैं और ये समाधिलाभ करवाने में सहायक होने के साथ-साथ विविध प्रकार के रोगों के सहज उपचार के भी प्रामाणिक माध्यम हैं। इसी प्रकार प्राणायाम भी योगसिद्धि के साथ-साथ अनेक रोगों को दूर करने वाला है। आसन और प्रणायाम जीवन में नवीन स्फूर्ति, ऊर्जा और बल प्रदान करने वाले हैं।

योग आत्मबोध, शक्तिलाभ एवं विश्व शान्ति सहायक:-

योग मानव मात्र के अज्ञान को परमार्थस्वरूप का लाभ करवाता है,[27] जिससे वह सभी प्राणियों में एकत्व अथवा समदृष्टि रखने लगता है। वह जाति, वर्ण, देश, धर्म, ऊँच-नीच, मत-मतान्तर का भेद नहीं करता। सभी में एक ही आत्मा अथवा भगवान् का दर्शन करता है।[28] सभी प्रकार की तपस्याओं, ज्ञानों एवं कर्मों से बढ़कर योग का स्थान है[29] क्योंकि यह एक ओर शरीर एवं मन की स्वस्थता (शुद्धि), ईश्वर की प्राप्ति में सहायक होता है, वहीं नैतिक अथवा मानवीय गुणों का उत्कर्ष करके मानव को मानव से जोड़ता है। अहिंसा में प्रतिष्ठा होने से सभी को वैर त्याग, सत्य से वचन अमोघता, अस्तेय से सर्वैश्वर्यलाभ और ब्रह्मचर्य से वीर्यलाभ प्राप्त होता है। भूत, वर्तमान, भविष्य ज्ञान आदि अनेक शक्तियों की प्राप्ति का योग से लाभ होता है। तभी लिंग पुराण में योग को निर्वाण अथवा माहेश पद से संज्ञित किया गया है।[30]

20. योगाङ्गनुष्ठानादशुद्धिखये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते:
21. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्माचर्यापरिग्रहा यमा:" - 2/30
22. या हिंस्यान्सर्वा भूतानि - श्रुति
23. परोपकाराय पुणां पापाय परपीडनम् - महाभारत
24. (क) सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान:- मुण्डकोपनिषद्, 3/1/6
(ख) अश्वमेधसहस्रं सत्यं च तुलयाधृतम-महाभारत, आदिपर्व, 74/103
25. मा गृध: कस्यस्विद्वनम् - ईशावास्योपनिषद, मन्त्र
26. ब्रह्मचर्येण देवा तपसा मृत्युगुपाघ्नत् - 'श्रुति'
27. तदा द्रष्टु: स्वरुपेऽवस्थानम् - पातञ्जलियोगसूत्रम्, 1/3
28. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:।।भ० गी०, 6/29
29. तपस्विभ्योऽधिकोयागी ज्ञानभ्योऽपि मतोऽधिक:।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भावर्जुन।।-तदेव 6/46
30. योगशब्देन निर्वाणं माहेशं पदमुच्यते - लिङ्ग पुराण, 5

SHRI RUDRAM

(A hymn in praise of Lord Rudra based on the mantras of the *Taittiriya Shakha* of *Krishna Yajurveda*)

Commented upon by Swami Dayananda Saraswati, Rishikesh

(continued from the pervious issue)

Anuvaks 3 -- 6

Anuvak 3:

1. नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra who सहमानाय = Condones all crimes (is forgiving his devotees) निव्याधिन = afflicts always (the enemies आव्याधिनीनां पतये = is the Lord of all affflicting devatas नमः = Prostrations to Him.

Note: There are *devata*s for every disease each disease is caused by its own *devata*. It is Rudra who gives afflicting *devata*s power to afflict.

2. नमः ककुभाय निषङ्गि.णे स्तेनानां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra, who ककुभाय = sits on the hump of a bull; निषङ्गि.णे = holds the sword in his hand, स्तेनानां पतये = is the Lord of thieves who steals under cover; नमः = prostrations to Him.

Note: (1) out of sport some times He assumes the form of thieves like an actor.

(2) He is greatest of the thieves as He snatches away everything in the end.

3. नमो निषंगिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमः।

नमः Prostrations to Rudra who निषंगिण = has arrows ready to be set on the bow; इषुधिमते = has a quiver (full of arrows); तस्कराणां पतये = is the Lord of the dacoits; नमः = Prostrations to Him.

4. नमो वंचते परिवंचते स्तायूनां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra; वंचते = who cheats occasionally and परिवंचते = who cheats all the time; स्तायूनां पतये = who is the Lord of those who steal remaining close by. नमः = Prostrations to him who appears in all these forms.

Note: There are people whom you think are working for you. After sometime, you find they have built up a business of their own. They are the *stayus* -- without being detected, they steal. They are greatest cheats.

5. नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra; निचेरवे = who moves about cleverly with a view to stealing; परिचराय = who constantly moves about with a view to stealing. आरण्यानां पतये = who is Lord of forest thieves; नमः = prostrations to him who appears in all the above forms.

6. नमः सृकाविभ्यो जिघाँ॒सद्भ्यो मुष्णतां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra; सृकाविभ्यः = who is in the form of those protecting themselves with weapons; जिघाँ॒सद्भ्यः = who is desirous of destroying others; मुष्णतां पतये = who is Lord of those who steal grains is the fields; नमः = prostrations to him who appears in these forms.

7. नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra who appearas as असिमद्भ्य = thieves who wield swords and नक्तंचरद्भ्यः = Those who move about in the nights and rob people; प्रकृन्तानां पतये = chief of the dacoits who rob others after killing; नमः = prostrations to him who appears in all these forms.

8. नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुंचानां पतये नमः।

नमः = Prostrations to Rudra who appears as उष्णीषिणे = one who wears turban; गिरिचराय = one who moves about on mountains; कुलुंचानां पतये = lord of those who grab other's property; नमः = prostration to all above forms of Rudra.

9. नम इषुमद्भ्यो धन्वाविभ्यश्च वो नमो।

नमः = Prostrations to Rudra; इषुमद्भ्यः = who hold arrows in their hands; धन्वाविम्यश्च = who hold bows in their hands; वः = prostrations to you Rudras. (वः = to you, वः = addressing).

Note: Hitherto Rudra alone was invoked. Now onwards his attendant Rudras (or forms of Rudra) are directly invoked.

10. नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to Rudras; आतन्वानेभ्यः = who string the bow, च = and, प्रदिधानेभ्यश्च = who are setting the arrows on the tied bow to release these; वः नमः = prostrations to you Rudras.

11. नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्च वो नमः।

नमः = prostrations to Rudras; आयच्छद्भ्यः = who pull the string of the bow, च = and विसृजद्भ्यः = who release the arrows from the bow. वः नमः = prostrations to your Rudras.

12. नमोऽस्यद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to Rudras; अस्यद्भ्यः = who are responsible for the motion of the arrow up to the target, च = and विध्यद्भ्यश्चः = who make the arrows to hit the target. वः नमः = salutations to you Rudras.

13. नम आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to *Rudramurtis*; आसीनेभ्यः = who are seated, च = and शयानेभ्यश्चः = who are reclining. वः नमः = salutations to you Rudras.

14. नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to you in the form of स्वपद्भ्यः = those who are sleeping, च = and जाग्रद्भ्यश्च = Those who are awake. वः नमः = salutations to you.

15. नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to you in the form of तिष्ठद्भ्यः = those who are standing, च = and धावद्भ्यः = those who are running. वः नमः = salutations to you.

Note: Standing ones refer to स्थावर such as trees, mountains etc. Running ones refer to जंगम, such as world, tiger, river, wind and Lord Yama.

16. नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः।

नमः = Prostrations to You in the form of सभाभ्यः = those who are gathered in an assembly, च = and सभापतिभ्यः = those who are presiding over the assemblies. वो नमः = salutations to you.

17. नमो अश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of those अश्वेभ्यः = who are in the form of horses, च = and अश्वपतिभ्यः = who are in the form of horse-riders. वः नमः = salutations to you.

Anuvak 4:

1. नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of आव्याधिनीभ्यः = female force that strikes on every side, च = and विविध्यन्तीभ्यः = female force that strikes in various ways and forms नमः = Prostrations, वः = to you.

Note: Kali Durga and so on constitute the female force.

2. नम उगणाभ्यसतृँहतीभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of उगणाभ्यः = hosts of Shakti which are gentle and bless (group of seven pleasing female deities who bless). च = and तृँहतीभ्यः = hosts of Shaktis which are fierce and harm (like Durga etc.) (Powerful female deities that harm). वः नमः = Prostrations to you.

3. नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of गृत्सेभ्यः = those who are greedy, (like fire), च = and गृत्सपतिभ्यः = lords of greedy ones. वः नम = Prostrations to you.

Note: The greedy ones never say enough here it refer to five

4. नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of व्रातेभ्यः = people belonging to different castes, च = and व्रातपतिभ्यः = lords of all these *vratas.* नमः = prostrations to you.

Note: व्रात are people having different professions.

5. नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of गणेभ्य = those who are attendants of deities, च = and गणपतिभ्यः = those who are the lords of all these *ganas.* वो नमः = Prostrations to you.

Note: Kartikerya, Nandikesvara, and Ganesha are all Ganapatis.

6. नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of विरूपेभ्यः = those who are formless or have disfigured form, च = and विश्वरूपेभ्यः = those who are in diverse forms. वः नमः = Prostrations to you.

7. नमो महद्भ्यः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of महद्भ्यः = those who are great (in their knowledge, form and powers), च = and क्षुल्लकेभ्यः = those who are small (having no intellectual accomplishment). वः नमः = Prostrations to you.

8. नमो रथिभ्योऽरथेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of रथिभ्यः = those who ride chariots (such as kings), च = and अरथेभ्यः = those who move on foot, those who are devoid of chariots. वः नमः = Prostrations to you.

9. नमो रथेभ्यो स्थपतिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of रथेभ्यः- chariots रथपतिभ्यः = those who are owners of chariots, वः नमः = prostrations to you.

10. नमः सेनाभ्यः सेनानीभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of सेनाभ्यः = soldiers in the army and च = and सेनानीभ्यश्च = those who are commanders-in-chief of the army वोः नमः = prostrations to you.

11. नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of क्षत्तृभ्यः = those who teach how to drive chariots, (who train charioteers -- the Guru), च = and संग्रहीतृभ्यः = those who are trained charioteers (those who wield the reins -- the disciples). वः नमः = my salutations to you.

12. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of तक्षभ्यः = carpenters, च = and रथकारेभ्यः = those who make chariots. वः नमः = prostrations to you.

13. नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of कुलालेभ्यः = pot-makers (potters), च = and कर्मारेभ्यः = metal-smiths, (black smiths) वः नमः = salutations to you.

14. नमः पुंजिष्टेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form पुंजिष्टेभ्यः = those who are bird catchers (fowlers), च = and निषादेभ्यः = fishermen. वः नमः = My salutations to you.

15. नमः इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of इषुकृद्भ्यः = those artisans who make arrows, च = and धन्वकृद्भ्यश्च = those who make bows. वः नमः = prostrations to you.

16. नमो मृगयुभ्यः श्वनिभ्यश्च वो नमः।।

नमः = Prostrations to you in the form of मृगयुभ्यः = those who hunt animals (poachers), च = and श्वनिभ्यः = those who lead the dogs while hunting. वः नमः = Prostrations to you.

Note: People with dogs hunt and those without dogs also hunt.

17. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः।।

नम = Prostrations to you in the form of श्वभ्यः-dogs च-and श्वपतिभ्यः = those who own dogs. वः नमः = prostrations to you.

Note: The third Anuvak is in praise of Rudra in the form of thieves of various kinds. The fourth Anuvak is in praise of Rudra assuming forms of various caste-men.

Anuvak 5:

From the 5th Anuvak to the 9thh Anuvak, Mantras have *namah* (नमः) in the beginning. The 5th Anuvak has fifteen Mantras (*yajus*).

1. नमो भवाय च रुद्राय च।।

नमः = Prostrations to the भवाय च = one from whom the universe in born, रुद्राय च = the one who removes the sorrow. रुत् = misery caused by Samsara)

2. नमः शंर्वाय च पशुपतये च।

नमः = Prostrations to शर्वाय च = the one who is a destroyer, पशुपतये च = lord of all beings.

3. नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।।

नमः = Prostrations to नीलग्रीवाय = the one who has blue neck, शितिकण्ठाय च = and the one who is white necked.

Note: As a result of consuming poison, one thousandth part of the throat became blue and the remaining portion continues to be white.

4. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च।।

नमः = Prostrations to कपर्दिने च = the one with matted hair, व्युप्तकेशाय = The one who has shaven head.

Note: The sect of Pashupatas have matted locks. Sannyasins have shaven heads. So salutations to Rudra in the form of Pashupatas and Sannyasins.

5. नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च।।

नमः = Prostrations to सहस्राक्षाय च = the one who has thousand eyes शतधन्वने = the one who is armed with hundred bows (one who has countless weapons).
(Note: सहस्राक्षाय = who is in the form of Indra).

6. नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च।।

नमः = Prostrations to गिरिशाय च = the one who resides on the Kailasa mountain, शिपिविष्टाय च = the one by whom everything is pervaded through his rays.

Note: (1) शिपि = says or a single ray (2) = in the form of Vishnu.

7. नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च।।

नमः = Prostrations to मीढुष्टमाय = one who pours rain in the form of clouds, one who is the ultimate cause of the universe, इषुमते च = one who holds the arrow.

8. नमो ह्रस्वाय च वामनाय च।।

नमः = Prostrations to ह्रस्वाय च = one who has a small body वामनाय च = one who has short limbs.

Note: Rudra is seated in our heart which is small. So Rudra is ह्रस्व and वामन.

9. नमो बृहते च वर्षीयसे च।।

नमः = Prostrations to बृहते च = the one who is big in physical form and great in qualities, वर्षीयसे च = one who is ancient

10. नमो वृद्धाय च संवृध्वने च।।

नमः = Prostrations to वृद्धाय च = the one who is the oldest (but he is not aged), one who is in the form of full grown cosmos, संवृध्वने च = the one who is eternally growing in glory by the praises showered on him by the devotees.

11. नमो अग्रियाय च प्रथमाय च।।

नमः = Prostrations to अग्रियाय च = the one who is supreme or primary (the first among all).

12. नम आशवे चाजिराय च।।

नमः = Prostrations to आशवे च = the one who pervades everything अजिराय च = the one who swiftly moves also as pervador.

13. नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च।।

नमः = Prostrations to the one शीघ्रियाय च = who is present in fast moving things, शीभ्याय च = who is present in swift flow of waters (rushing waters).

14. नमः ऊर्म्यार्य चावस्वन्याय च।।

नमः = Prostrations to the one ऊर्म्याय च = who is present in every wave, अवस्वन्याय च = who is present in still waters.

15. नमः स्रोतस्याय च द्वीप्याय च।।

नमः = Prostrations to the one स्रोतस्याय च = who is present in small streams, currents, द्वीप्याय च = who is present in islands (or in waters split by islands).

Note: In the 5th Anuvak, Rudra was saluted as one endowed with various glories. In the 6th Anuvak, Rudra is saluted as one who is the soul of all and who is inner controller of all.

Anuvak 6:

1. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च।।

नमः = Prostrations to the one ज्येष्ठाय च = who is elder, कनिष्ठाय च = who is younger.

2. नमः पूर्वजाय चापरजाय च।।

नमः = Prostrations to the one पूर्वजाय च = who is the primordial cause, अपरजाय च = who is the subsequent effect.

3. नमो मध्यमाय चापगल्भाय च।।

नमः = Prostrations to the one मध्यमाय च = who is the form of youth, अपगल्भाय च = who is an infant.

4. नमोः जघन्याय च बुध्नियाय च।।

नमः = Prostrations to the one जघन्याय च = who is in the form of animals, बुध्नियाय च = who is in the form of trees.

5. नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च।।

नमः = Prostrations to the one सोभ्याय च = who is in the form of human beings, प्रतिसर्याय च = who is in the form of moving beings (all that is dynamic).

Note: सोभ्यः That which has both पुण्य-पाप (vice and virtue) i.e. world of human beings.

6. नमो याम्याय च क्षेम्याय च।

नमः = Prostrations to one who is present याम्यायच = in *Yamaloka* (world of death) to mete out punishment to sinners, क्षेम्याय च = in heaven.

7. नमः उर्वर्याय च खल्याय च।

नमः = Prostrations to the one who is present उर्वर्याय च = in the form of the things that have come from the earth.

Note: (According to some it means fertile land).

खल्याय च = in the form of the grain we find on the threshing floor where grain is separated from husk.

(खल = threshing floor, खल्य = grain or खल).

8. नमः श्लोक्याय चावसान्याय च।

नमः = Prostrations to one who is present in the श्लोक्याय च = Vedic Mantras, and अवसान्याय च = Vedanta, (end of the Vedas).

(**Note:** श्लोक = verse, अवसान = end).

9. नमो वन्याय च कक्ष्याय च।

नमः = Prostrations to the one present in वन्याय च = the forest in the form of trees, and कक्ष्याय च = creepers, bushes etc.

10. नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च।

नमः = Prostrations to one present in श्रवाय च = sound, and प्रतिश्रवाय च = its echo.

11. नम आशुषेणाय चाशुरथाय च।

नमः = Prostrations to the one आशुषेणाय च = whose army moves swiftly, and आशुरथाय च = whose chariot moves fast.

12. नमः शूराय चावभिन्दते च।

नमः = Prostrations to the one शूराय च = who is the valiant one, (brave warrior) अवभिन्दते च = who destroys the fort of enemies.

13. नमो वर्मिणे च वरूथिने च।

नमः = Prostrations to the one वर्मिणे च = who has the protecting armour, and वरूथिने च = who is in the form of the secret place of protection of charioteer.

14. नमो बिल्मिने च कवचिने च।

नमः = Prostrations to बिल्मिने च = the one who has worn the protecting helmet, and कवचिने च = the one who has the protective armour (कवच = coat of armour touching the heels).

15. नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च।

नमः = Prostrations to श्रुताय च = the one who is reputed and is praised in the Vedas, and श्रुतसेनाय च = the one whose army is reputed and praised in the Vedas, (army of presiding deities).

Courtesy Swami Dayananda Saraswati, Gangadhareswar Trust, Rishikesh.

PREPARATIONS FOR ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO'S BIRTH CENTENARY CELEBRATIONS

To coordinate, manage and organize various programms connected with the birth centenary celebration of Swami Ishwar Swaroop Lakshman Joo Maharaj (5/2006 to 5/2007), following working committees are hereby constituted:

WORKING COMMITTEE : CENTRAL

1. Sh. I. K. Raina
2. Sh. S. P. Dhar
3. Sh. B. N. Kaul
4. Sh. M.K. Wattal
5. Prof. ML. Kokilu
6. Dr. S.S. Toshkhani
7. Sh. Motilal Pandit
8. Sh. R. K. Sadhu
9. Sh. J. L.Bhatt
9. Smt. Anjana Dhar
10. Sh. Dilip Thussu
11. Sh. Som Nath Saproo
12. Sh. Vijay Kumar Kaul
13. Sh. M. L. Razdan
14. Sh. Shiban Ji Kaul
15. Sh. A. K. Ganjoo
16. Dr. B. N. Kalla
17. Dr. B. L. Bhat
18. Sh. R. N. Tickoo
19. Sh. Devinder Munshi

Sh. R. K Sadhu will be the convener of the committee.

WORKING COMMITTEE- JAMMU KENDRA

1. Sh. B. N. Kaul
2. Sh. S. N. Saproo
3. Sh. B. L. Bhat
4. Sh. R. N. Tickoo
5. Sh. Vijay Bakshi
6. Sh. Krishan Lal Warikoo
7. Sh. S. K. Raina
8. Sh. Rajinder Jee
9. Sh. S. K. Dhar
10. Sh. Ramesh Bakshi
11. Sh. Dilip Thussu
12. Sh. Bhushan Lal Bhat
13. Dr. S. L. Munshi
14. Smt. Vijay Munshi
15. Smt. Santosh Raina
16. Sh. P. N. Razdan

Sh. Brij Lal Bhat will be the convener.

WORKING COMMITTEE : KASHMIR KENDRA

1. Sh. M. K. Wattal
2. Sh. Vijay Kumar Kaul

3. Sh. Shiban Jee Kaul
4. Smt. Khema Moza
5. Sh. Pran Nath Razdan
6. Sh. Ramesh Kilam
7. Sh. Dilip Thussu
8. Sh. K. L. Kitroo
9. Sh. Vijay Kaul
10. Sh. Tej Krishen Kaul
11. Sh. B. K. Malla
12. Sh. O. N. Kak

Sh. Vijay Kumar Kaul will be the convener.

WORKING COMMITTEE : DELHI KENDRA

1. Sh. S. P. Dhar
2. Sh. I. K. Raina
3. Prof. M. L. Kokilu
4. Dr. S. S. Toshkhani
5. Sh. Motilal Pandit
6. Sh. R. K. Sadhu
7. Sh. J. L. Bhatt
8. Smt. Anjana Dhar
9. Sh. M. L. Qazi
10. Sh. M. L. Munshi
11. Sh. Subodh Muckoo
12. Sh. M. L. Razdan
13. Sh. Brij Mohan
14. Sh. B. L. Kachroo
15. Sh. C. L. Mirakhur
16. Sh. A. K. Ganjoo
17. Sh. O. P. Dhar
18. Sh. Devinder Munshi
19. Sh. Rajinder Premi
20. Sh. R. L. Peer
21. Sh. Surinder Kher

Smt. Anjana Dhar will be the convener.

In addition to the above, there will be a core group to follow up weekly progress work related to seminars and publications in the Delhi Kendra. This group will comprise of the following.

1. Prof. M. L. Kokilu
2. Dr. Shashi Shekhar Toshkhani
3. Sh. Motilal Pandit
4. Sh. J. L. Bhatt
5. Sh. R. K. Sadhu
6. Smt. Anjana Dhar

Dr. S. S. Toshkhani will be the convener.

The committee as constituted above will start work in earnest, as the time available is very short. They must meet as often as required but not less than twice a month so that all the relevant plans are drawn up and implemented as per the schedule. Minutes of the each meeting regarding suggestions and programme during the year and other relevant reports should reach the Trustee/ Secretary without any delay for immediate action and approval so that no time is wasted.

The plans finalized by each center must reach the undersigned latest by 30.11.2005 so that necessary follow-up is ensured.

With Blessings of Gurudev

Sd.

(I. K. Raina)
Dt. 19.10.2005

THE SACRED EXPERIENCE

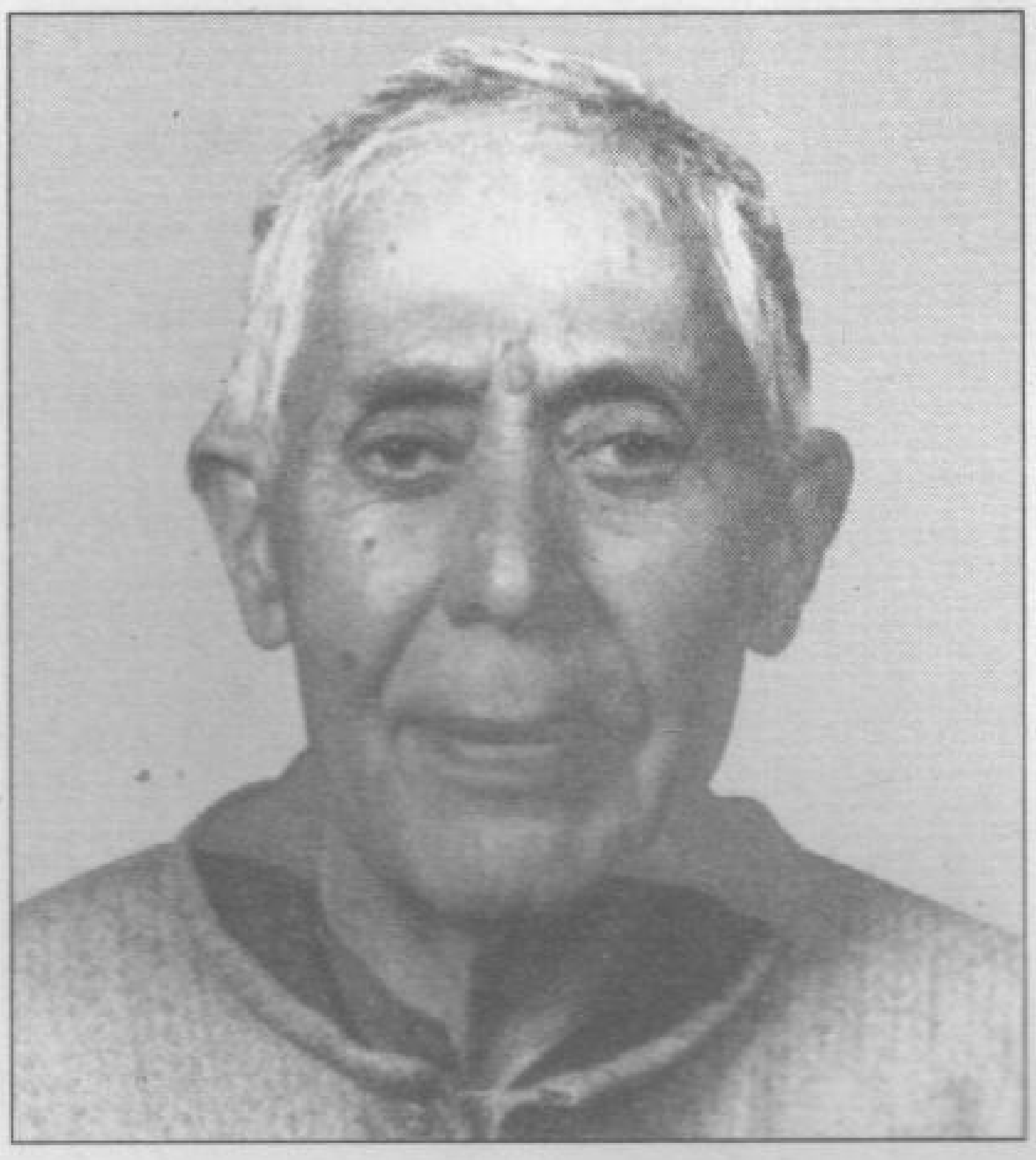

There is a point twixt sleep and waking
where thou shalt be alert without shaking.
Enter into the new world when forms so hideous pass;
They are passing endure, do not be taken by the dross.
The pulls and the pushes about the throttle,
all those shalt thou tolerate.
Close all ingress and egress,
yawnings there may be;
Shed tears crave- implore, but thou will not prostrate.
A thril passes and that goes down to the bottom;
It riseth, may it bloom forth, that is Bliss.
Blessed Being, Blessed Being,
O greetings be to Thee.

-- Ishvarasvarup Svami Lakshman Joo